138 138

ॐ

प्रस्तावना.

इस अविचारित सुख लेश लसित दुःख बहुल संसारमें प्राणिमात्रको दुःख प्रायः दोतरहका देखनेमें आताहै एकका स्थूल शरीरहीमें प्रायः भानहोताहै जैसे वातपित्तादिके प्रकोपसे ज्वरादि और दूसरा दुःख मानसिकहै जैसे राग द्वेष ईर्षादि इस उभयविध दुःखके प्रतिकारक चिकित्सकभी इस हमारे पवित्र देशमें अनेक महामान्य ऋषि महर्षि तथा मुनि महामुनि हो चुके हैं। जैसे प्रथम दुःखके प्रतिकारक महर्षि पतञ्जलि महर्षि धन्वन्तरी इत्यादि अनेक हुएहैं। एवं द्वितीय दुःखके दमन कर्ता व्यास वसिष्ठ वामदेवादि अनेक हुएहैं। इन उभयविध दुःख प्रतिकारक महात्माओंने उभयत्र दुःख प्रतिकारक चिकित्सा ऐसी पूर्ण रूपसे लिखी है कि तत्पश्चात् भाविविद्वान् गणको अद्यावधि उसकी अपूर्तिका कवीसन्देहतकभी नहीं हुआ कारण इसमें यहहै कि वे महर्षिलोग महायोगी दीर्घदर्शी तथा परमज्ञानीथे जो कुछ उन्होंने लोकोपकारार्थ विचार कियाहै वह सब योगबलके प्रभावसे पूर्ण ही कियाहै। अतएव आधुनिकपुरुष उनकी अपूर्ति पूर्ण तो क्या करेगा उनके किये विचारमें इसका चंचु प्रवेश होनाही बहुत कठिनहै उक्तमहर्षि सिद्धान्तानुकूल यदि किसी आधुनिकका किसीएक अंशमें लिखनेका साहसभी होताहै तो वह इसकी किंचितज्ञतासे ऐसा भद्दा लिखाजाताहै कि उसको [illegible]फल सुज्ञसमाजमें तथा विशेष रूपसे साधु समाजमें इसको सत्कृतिपूर्वक प्रचलित देखकर मैंनेभी सज्जनसमाजके

ही महर्षि सिद्धान्तका मर्म्मज्ञ नहीं है । यद्यपि ऐसे २ व्यर्थ कागज कालेकर २ के मर जानेवाले अनेक हो चुके हैं तथापि उनमें एक आधुनिक मानसिक चिकित्सकका लेख, ऐसा सम्भावित तथा परीक्षक मण्डलीमें समादरणीयहै कि पशुप्राय प्राणीके सिवाय कौन वह पुरुष पशुहै जोकि उसके सर्वप्रिय सदुपदेशको श्रवणकर अपने शिरको अकस्मात् न फिरावे । यदि कोई पूँछे कि ऐसा आधुनिक कौन हुआहै तो हम उसको यही उत्तर देते हैं कि एकही जगत् प्रख्यात महाराजाधिराज योगिराजभर्तृहरिः । क्यों नहो इनके परीक्षितार्थावबोधक विमल वचनोंका विज्ञमण्डलमें समादरणीय होना उचितही है । क्योंकि अनुभव इनका भोग तृष्णातुर साधारण पुरुषोंकी तरह साधारण नहीं है । किंतु सांसारिक सम्पूर्ण ऐश्वर्य वैभवसे क्रीत असाधारणहैं अनेकप्रकारके मानसिक सन्तापकी जिस २ विचाररूपी औषधिको उक्त योगिराजने स्वयं अनुभूत करलिखा है. वह ऐसे उत्तम ढंगसे कहाहै कि रुग्ण अधिकारी को सुनतेही आरामका सूचक रोमांच हुए विना नहीं रहता. उक्त योगिराजने अपने मनोहर वचनोंका शतक कहा है । तथा उसको लोक उपकारक जान अनेक सज्जन पुरुषोंने संस्कृत तथा भाषामें कईएक व्याख्यानोंसे भूषितभी कियाहै.

उनही व्याख्यानोंमेंसे एक पञ्चनद देशनिवासि कविवर हरिदयाल कृत व्याख्या वर्तमान कालमें विरक्त सज्जनगणमें अधिक समादर-
[illegible]नके वचनोंको भाषाकाव्य

षके चित्तमें संतोष नहीं होता प्रत्युत ऊपर नीचे उभयत्र देखकर सन्देह पैदा होताहै कि योगिराज ऐसा बोलाथा या ऐसा ?

वैराग्य जैसे सूखे विषयको लेकर भी अपने काव्यको अलंकारों-तथा रसोंसे पूरित दिखलाना कोई साधारण पुरुषका काम नहीं है परन्तु उक्त कविकी लोक भाषाकी कविता अपनेपर विरक्तोंको भी संरक्त करती हुई अपने कर्ता स्वामीकी तथा अपने सर्वरूपसे निष्क-लंकताकी बोधिका है योगिराजने अपने शतकमें प्रायः १३ विषयोंपर लिखाहै भाषाकारने प्रत्येक विषयकी समाप्तिपर अध्याय नियत-कियाहै इनमें प्रथमाध्यायमें स्वमनको शिक्षाहै १. दूसरेमें अपने बुरे स्वभावकी निन्दा तथा पश्चात्तापहै २. तीसरेमें कालकी महिमाहै ३. चौथेमें अपने चित्तकी उत्कंठा तथा शंभूके आगे प्रार्थनाहै ४. पञ्चममें विधाताको उपालम्भ दियेहैं ५. षष्ठमें सत्पुरुषोंके गुण कहेहैं ६. सात-वेमें तीन राजाओंके साथ वार्तालापहै ७. आठवेमें राजाओंके अभिमा-नकी निन्दाकरीहै ८. नवमेमें अपनी अज्ञदशाका स्मरणहै ९. दशवेमें सबको साधारण उपदेशहै.

ग्यारवेमें स्त्रीकी निन्दाहै११. बाहरवेमें वृद्धावस्थाका निन्दाइ १२. तेरहवेंमें संकीर्ण उपदेशहै १३. बस इन तेरह विषयोंका प्रदर्शक यह छोटासा ग्रन्थ उभय भाषासे भूषित मानो उक्त विषयोंका चित्रहै. अत एव साधारण रूपसे सकल सुज्ञसमाजमें तथा विशेष रूपसे साधु समाजमें इसको सत्कृतिपूर्वक प्रचलित देखकर मैंनेभी सज्जनसमाजके

सेवाभागके भागीबननेके लिये तथा महात्माओंके वचनोंको प्रकाश-
कर पुण्य विशेषके लाभके लिये काशीनिवासी निर्मल पं० स्वामि
गोविन्दसिंहजीसे शुद्धकराय तथा कठिन स्थलोंमें टीपकराकर पवित्र
पुस्तकाकार छापकर सज्जन गणकी सेवामें नियुक्त कियाहै इतिशम्.

आपका कृपाकांक्षी-
क्षेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्ष-मुंबई.

निम्नलिखित पतेपर सब प्रकार की पुस्तकें मिलती हैं।
हीरानन्द मोतीराम,
आलुवालाकटरा-अमृतसर.

ॐ

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीभर्तृहरिकृतंवैराग्यशतकम् ।

तथा

कविवरहरिदयालकृतपद्यात्मक भाषासहितम्.

दोहा ।

दुरद वदन दुरजन दलन, मदन कदन शिवनंद ।
एक रदन सुखसदन के, पाद पद्म प्रति वंद ॥ १ ॥

सवैया ।

जिहिंशेषकिसेजपैशैन कियो,पदकोमलकोमलतीकमलाहीं
करमें दर[१] चक्र सरोजगदा,भृगुपाद[२] गरे स्रक्अंगद[३]बाहीं॥
जिहिपादकोवारि[४]सुचारु[५]विचारधऱ्योत्रिपुरारि[६]सदाशिरमाहीं
असरूप[७]जिसेउरभीतरहैभव[८]भीतरहैकछुताउरनाहीं२॥

---

१ शंख। २ वक्षस्थलमें भृगुलता। ३ भुजाओंमें भवँटा। ४ गंगाजळ। ५ पवित्र। ६ शंकर। ७ शेषशायी भगवान्का। ८ संसारका भय।

श्लोकः ।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्ना ऽनंतचिन्मात्रमूर्तये ॥स्वानुभूत्येकमानाय नमःशांताय तेजसे ॥ १ ॥ चूडोत्तंसित चारु चंद्रकलिका चंचच्छिखा भास्वरो लीलादग्ध विलोलकामशलभः श्रेयो दशाग्रे स्फुरन् ॥ अंतः स्फूर्जदपारमोहतिमिर प्राग्भार मुच्चाटयन् चेतःसद्मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः ॥ २ ॥

अब दो श्लोकों करके मंगलाचरणको कहता हों—दोहा ।

शांत प्रकाश स्वरूप प्रति, नमो सर्वदा होय ।
सृष्टि स्थिति लय क्षोभविन,रविशशि भासकसोय॥
दिक्कालादि प्रच्छेद बिन, चिदानंतवपु जोय ।
स्वानुभवैक प्रमाणतिहँ, नमो काव्य इति होय ॥

---

१ चिदात्मा का व्यापक होनेसे देशसे अन्त नहीं है नित्य होनेसे कालसे अन्तभी नहीं है चिदात्मा ही को सर्व रूप होनेसे वस्तुसे अन्तभी नहीं है ऐसे तीन प्रकारके प्रच्छेद (भेद) से रहित चिदानन्त स्वरूप ब्रह्म अपना आपहै ।

अथ शिवोपमा—तोटक छंद ।

हरज्ञानप्रदीप सदालशके । मन मंदिरयोगिनकेवसके ॥
बहुमोहउदैजुहदैतिनके । तमपुंजवहीतिहँकोहनके६ ॥
पुनिलोलअनंगपतंगमहा । क्षणमाहिंस्वभावकताहिंदहा
निहकामसमूहगुणाग्रदिपै । सुसनेहसनेहवहीअरपै ॥ ६ ॥
जिनकेअतिभालकिभागभले । असदीपकतामनधामजले ॥
जिहँभूषणभालमयंकसही । कलिकाकलदूजकलंकनहीं
बिबतासशिखासुप्रकाशसमं । दिनरातिविभातिप्रशांततमं
पुनतीनगुणोयुतदेवत्रये । द्दिगतीनकिनैनमिऐनकये ८ ॥
सतसंगवसे हरिनेत्रसजे । सरजोअर्जलोचनदूजसजे ॥
अगनाक्षविषेनिजहैसतमो । भवपालग्रसेअसईशनमो ॥

दोहा ।

भरत शतक वैरागको, भाषकार हरिद्याल ।
केवल प्रेम हुलास उर, लवंन कविन की चाल १०
अर्थ वरन वृत वरन युत, भूप वचन शिव ऊप ।

---

१ विष्णु । २ ब्रह्मा । ३ लाहौरके रहनेवाले कवि लोगोंकी अथवा लेशमात्र । ४ यद्यपि मेरे कथन में अर्थ वर श्रेष्ठ नहीं है तथा (वृत्त)छन्दभी वर नहीं है तथापि शिवजीकी उपमा वाले राजाके वचनो का उल्थाहै ।

बालव्याह की गालिं सम, दूषण भूषण रूप ११

कवित्त ।

सोम नाम विप्र वर गिरिजा के वर कर,
लीनो सुधाफल कर दीनो नरनाहिके ।
भूपति स्वपतनी को राणी निज मीतहीको,
ताने दीनो गीतकीको नीको फल चाहिके ॥
आगे गणिका सरागे धरापति आगे धरा,
नरनाथ माथ धुना सुनधुना ताहिंके ।
हाहा कामिनी के हित हते कामनीके अब,
ताहिं तजों ताहिं भजों शीश शशि जाहिंके॥१२॥

श्लोकः ।

यां चिंतयाम्यनुदिनं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति नरं सनरोन्यसक्तः ॥
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं चइमां चमां च॥३॥

सवैया ।

जिनकोंनितमैंचितमोचितमोतिनकीरतिमोतनमाहिं रतीना।

वहआनपुमानकिसंगरतीपुनितामनमेंगणिकागृहकीना॥
धिकहैअबलाभ्रितकंदर्पैंअरुमोंहिंधिकारजुमारैअधीना॥
इतिरीतिसमूहकिप्रीतितजीनृपह्वोययुगीश्वरईश्वरचीना१३

दोहा।

भन्योभूपवैराग्यशत, निजमनशिक्षा हेतु।
सुनोजनोशुभगिरातिहँ, जगतजलधिमहिसेतु १४॥

सोरठा।

अतिनदवतगंभीर, श्रीहरिभर्त विरागशत॥
जन्ममरणभयनीर, विकसतकमलश्लोकगण १५॥

कबित्त।

दोषँदृष्टि नालि गुरु दल पद लघुपर,

---

१ स्त्री। २ नौकर। ३ कामदेव। ४ कामदेव। ५ समुद्र। ६ पुल। ७ संसारिक पदार्थोंमें दोषदृष्टि होनी यही श्लोक रूप कमलों की लम्बी नाली है। भीतरके पत्तोंके स्थानापन्न श्लोकोंके पदहैं बाहरके-छोटे पत्रोंके स्थानापन्न श्लोकों के अंकहैं। वर्णोंकी मात्रा स्निग्ध तरी रूप हैं श्लोकका अर्थ सुवास रूपहै अधिकारीको डाटना ताड़ना यही श्लोक रूप कमलों में कांटे हैं। और कुसंग रूप चन्द्रको देखकर यह श्लोक रूप कमल खिलते भी नहीं विवेक रूप सूर्य्यके सामने अर्थात् विवेकी पुरुषों में यह श्लोक रूपकमल प्रकाशते हैं इसी रीतिसे सागरा रूपक बनालेना।

अंकमात्रा तरीतर अरथ सुवासहै ।
डांटे काँटे मंद संग इंदुहेर निषपंद,
अ एक विवेकके प्रकाशते विकाशहै ॥
भोगी भूँड भोग मल भोगत नतजै पल,
संतन को मन अली सेवे सदा तासहै ।
ऐसो नर आँखों सों विलोकों नाहिं जाहिं आखों,
भाखोंनिजमनहींको वाक्यभवनाशहै ॥ १६ ॥

दोहा ।

श्रुतिवक्ता भुक्ता अवनि, बहुर इतर बहुलोक ।
तिनहिंविलोकनसकहिंतिन,शुभगसरोजश्लोक १७
तिनके अन अधिकारको, करके प्रगट बहोर ।
श्रीहरि भरत स्वचित्त प्रति, भनतसुवचननिचोर॥

श्लोकः ।

बोद्धारो मत्सर ग्रस्ताः प्रभवः स्मय दूषिताः ॥ अबोधोपहता श्चान्ये जीर्ण- मंगे सुभाषितम् ॥ १४ ॥

कबित्त ।

ग्रंथनके ज्ञाते माते मतसर कीच बीच,
धरानाथ मद साथ भरे दरशातहैं ।
दूषण चमोरें मोरे भूषण सुभाषन को,
पंडित भूपाल तो नसुने मेरी बातहैं ॥
पुना आन जंतु जेते दुखी मूढ दीन तेते,
मोते सकुचात हम ओते सकुचातहैं ।
पात्रबिना भाखे रांखे[1] हवन को राखे तैसे,
जीरणमो गात मो सो बात होत जात है ॥ १९ ॥

सोरठा ।

वक्ताहै नृप आप, श्रोता निज मनको कियो ।
रुद्रं[2] श्लोक अलाप, कियो अचल निहताप चित ॥

श्लोकः ।

भ्रांत्वा देशमनेक दुर्गविषमं प्राप्तं न किं चित्फलं त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितंसेवाकृता निष्फला॥भुक्तंमानविवर्जितं

१ छारमें । २ यारां ।

परगृहे साशंकया काकवत्तृष्णे जृंभसि
पापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥ ५ ॥

कवित्त ।

दुरगम विषम अशेष देश भ्रम कर,
लह्यो मैं कलेश गह्यो लेश नाहिं धन को ।
जाति कुल काभिमान उचित विहायताहिं,
सेवा कीनी फलहीनी शोच भयो मन को ।
काकयों सशंक[1] मान बिन परधामखायो,
अजे रजे न सप्रीत भजे दुरतन[2] को ।
ब्रह्मते विछोर नीच तृष्णा कीनो ढोर अब,
होर जो नचात कहाँ होर करें जनको ॥ २५ ॥

श्लोकः ।

खलोल्लोपाः सोढाः कथमपि तदाराध-
नपरैर्निगृह्यांतर्बाष्पं हसितमपि शून्येन-
मनसा ॥ कृतश्चित्त स्तंभःप्रतिहतधिया
मंजलिरपि त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो
नर्तयासिमाम् ॥ ६ ॥

---

१ सहित शंकाके । २ पापियोंको या पापोंको ।

पुनः वहीकवित्त ।

आशे फलहीनी कीनी तेरे बल सोंसेवादि,
मूढोंके कुबैन से[1]ढे नैन छोडें व[2]नको ।
चित्तको संकोच कीनो कं[3]हिगसों रोकलीनो,
भावीशोक चीनो पीनो कीनो न वचनको ।
हस्योभी निकार दंत जैसे चिंता मान जंता,
जोर कर कर[4] करी वंदना नीचन को ।
तैसे नमो करों तुमें तेरे संग चिर भ्रमें,
अब चाहे छोर हमें काहे दाहे जन[5]को ॥२२ ॥

श्लोकः ।

उत्खातं निधिशंकया क्षितितलं ध्माता
गिरेर्धातवो निस्तीर्णः सरितांपतिर्नृप-
तयो यत्नेन संतोषिताः ॥ मंत्राराधनत-
त्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोपि न मया तृष्णे
ऽधुना मुंच माम् ॥ ७ ॥

---

१ सहारे । २ जल । ३ नेत्रोंकाजल । ४ हाथ । ५ दास ।

तोटक छंद ।

अबतो तजतूंहमकोतृषने ।तवलाभविषेममखेदघने ॥
तुमकीन मुझे मनवासजबे। धनशंकउठीउरमोरतबे ॥
सभकोवितहैसभ भूमतले ।हमखोद थके परयंत जले॥
गिरिधातुकृशानुप्रतापदही। अबलाभरसायनहोयसही
हमसिंधुतरेमुकतादिसुने ।मुकतादिकहाँशुकत्यादिलुने॥
बहुभूपनको यतनोकरके ।अतिकीन प्रसन्नलजाहरके ॥
कराचित्तइकाग्रकुमंत्रजपे ।श्मशाननमेंनिशिपुंजखपे ॥
करहोंजबमैंवशिभूतनको। परकीहरदेहिंविभूतिनको ॥
इमआयुवृथाममहंतसभी।मुहिकाणवराटकभीनलभी ॥
कतकाजनिलाजअकाजदहो ।तजमोहिकहूँअबआनगहो

सोरठा ।

कऱ्यो ब्रह्मतेजीव, चाहे अब चाहें कहाँ ।
किधों करे निरजीव, आशेतव आशय कवन॥२८॥

श्लोकः ।

परिभ्रमसि किं वृथा क्वचन चित्त विश्रा-
म्यतां स्वयंभवति यद्यथाभवति तत्तथा

१ किसी दूसरेको ग्रहणकरो ।

नान्यथा ॥ अतीतमपि नस्मरन्नपि चभावि संकल्पयन् अतर्कितगमागमाननुभवस्व भोगानिह ॥ ८ ॥

पुनः सवैया ।

शांति निजांतर किंनगहैं कतडोलैं वृथाभवमो सचैना ।
होय यथासुतथा निजहै तुमते अन्यथा वहुहोवत ना ॥
प्रीतिनसाथवितीतभलीकछुहाथमिलीनयथास्वपना ।
मोनै गहो अवमों न गहो तुम मोरागिरा जिन मोरमना २९
भाविकि भावअभावयथा नरमोतिनमोनभकेसुमना ।
मध्यकि भोगकिमध्य रमोगतराग भ्रमो अनउत्तरना ।
ब्रह्म नपुंसक यौं मनतू बिनतां तवदंपतिमोसुखना ।
टेरत मै प्रतिफेरतुमै तुम मोमतको मत फेर मना ३०

श्लोकः ।

परेषांचेतांसिप्रतिदिवसमाराध्यबहुधाप्र

---

१ बहुत ही । २ जोभावीहै सो तेरसे टलनेको नहींहै । ३ विश्रांति ग्रहण करो । ४ भावीहोनेवाले पदार्थ नहुए जैसेहैं उनके साथ प्रेमकरना मानो आकाशके फूलौंकी गंधि लेनेकी इच्छा करनीहै । ५ विनाब्रह्मके तेरमें या तेरी स्त्रीतृष्णामें सुख नहींहै । दम्पति नाम स्त्रीपुरुषका है ।

सादे किंनेतुं विशसि हृदयक्लेशकलिलं ।
प्रसन्ने त्वय्यंतः । स्वयमुदितचिंतामणि-
गुणे विविक्तः संकल्पः किमभिलषितं-
पुष्यति न ते ॥ ९ ॥

पुनः कबित्त ।

चित्तरेतूं वित्त[1]के निमित्त दिन रात नित्य,
सेवत परोंके चित्त एही दुःख अतिरे ।
तिनोकी जो मुदता सोउदत[2] कलेशों कर,
मत मान करे हत ताँको[3] ताको मतरे ।
निज चिंता तजसोवे स्वाँतर प्रसन्न होवे,
चिंतामणि गुण[4] जोवे देहमें महत्तरे ।
ताते अभिलाषित न तेरो किधों सिद्धहोय,
सुधां[5]पान करेते न किधों व्याधि हतरे ॥ ३१ ॥

दोहा ।

तनुमो तनक निवास तव, चिंतामणितज ताहिं ।
बहिरकृपणगृह परां[6]भव,सहित द्रविणाँ[7]हित काहि॥३०॥

---

१ धनकेलिये । २ उत्पन्न होतीहैं । ३ उनकी तरफ देखमत ।
४ संतोषरूपगुण । ५ अमृत । ६ निरादर । ७ धन ।

श्लोकः ।

एतस्मा द्विरमेंद्रियार्थगहनादा यासका-
दाश्रयात् श्रेयोमार्ग मशेषदुःखशमन-
व्यापारदक्षं क्षणात् ॥ शांतं भाव मुपैहि
संत्यज निजां कल्लोललोलां गतिं माभू
योभजभंगुरां भव रतिं चेतः प्रसीदा
धुना ॥ १० ॥

पुनःकवित्त ।

इंद्रियोंके भोगसारे भारेरोगदेनवारे,
ताकोकीजे हेय[1] मत श्रेयपथ तजरे ।
पाप अंद्रि[2] नाशनको वज्र पाकशासनिको[3],
दाहेदोष घासन को मोक्षशिखी[4] सजरे ॥
हूजोशांत भावबीच प्रापतकदापिनीच,
आपनी कलोल लोले[5] गतिते नलजरे ।

---

१ अर्थात् इन्द्रियोंके भोगोंमें (हेय) त्याग बुद्धिकर और श्रेय पंथको मत छोड़ । २ पाप रूप पहाडोंके नाशार्थ । ३ इन्द्र । ४ अग्निः । ५ चंचल ।

क्षणभंग भवराग ताँको मनकरोत्याग,
मोक्षको वैराग्य सहकारी तास भजरे ॥ १० ॥

श्लोकः ।

मोहं मार्जय तामुपार्जय रतिं चंद्रार्धचूडामणौ चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवा मासंगमंगी कुरु ॥ कोवावीचिषु बुद्बुदेषु चतडिल्लेखासु च स्त्रीषुच ज्वालाग्रेषुच पन्नगेषुच सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥ ११ ॥

पुनः कवित्त ।

परवारके सनेह को निवारदेहि मन,
वीचीबुदबुदे रेखा दामिनी[1] समानीये ।
पुना दीपतागनिमै नागनमै नदीवेग,
माहिं जैसे सुखनाहिं तैसे ताहि जानीये ॥
देवनदी[2] तीर की पवित्र धरा पर पैठ,
नील[3] कंठ माँहि नीत उतकंठा ठानीये ।
अब ऐसी रीति करो भोगनकी प्रीति हरो,
गुरुवेद वाक्य धरो तीनताप हानीये ॥ ११ ॥

---

१ विजली । २ गंगाजी । ३ महादेव ।

श्लोकः ।

आक्रांतं मरणेन जन्म जरया यात्यु-
ज्ज्वलं यौवनं संतोषी धनलिप्सया शम-
सुखं प्रौढांगनाविभ्रमैः ॥ लोकैर्मत्सरि-
भिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै रस्थै-
र्येण विभूति रप्यपहृता ग्रस्तं न किं
केनवा ॥ १२ ॥

पुनः चौपाई ।

जन्ममहावरग्रस्योमरणकर । अघकोजपज्योंमृगकोनाहर
पुनिनिर्मलअतियुवानुकूला । जराकरातांकोनिर्मूला ॥
दुरितहरतज्योंतुरतगंगजल ।कलहगौनज्योंकरेमौनबल
पुनिधनचाहिग्रस्यो संतोषा।यज्ञविपाक ग्रसे ज्योंरोषा॥
तरलतरुणतरुणीकेलोचन।ताहिविभ्रमहिसबसुखमोचन॥
ज्यों निरवेद खेद भवहारें ।पुना सतोज्योंरजतमटारे ॥
ग्रसेगुणीके गुणको खलईउँ।ब्रह्मविचारविकारग्रसेजिउँ॥

---

१ सिंह । २ अर्थात् मौनके बलसे जैसे लडाई मिटजाती है ।
३ चंचल ।

ग्रास्योइँउँक्षितिकोउरगादिक।लाजत्रासकोज्यों कामादिक
ग्रसत दुर्जनोंकर नृप ऐसे । गिलेप्रश्नको उत्तर जैसे ॥
सकलविभूतिअनास्थिरतानें । ग्रसीमनीषा[1]ज्योंचितानें॥
इसप्रकारजनकेके नाँहीं । ग्रस्त कालकर याँभव माहीं ॥
अज पिपीलिका लगजगजेतो।ग्रस्तसमस्तकालकरतेतो॥

दोहा ।

सकल भोग भवहेतु मनें[2], चपलसदोषसशोक ।
ता तज भोगी जनोयुत, गुरु श्रुतिपंथ विलोक४१

श्लोकः ।

अग्रे गीतं सरस कवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् ॥ यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लंपटत्वं नोचेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥ १३ ॥

---

१ विचारशालिनीबुद्धि । २ हे चित्त संसारके सबीभोग अति चंचल शोकके देनेवाले तथा अनेकप्रकारके दूषणोंयुक्त होनेसे संसारहीके हेतुहैं इसलिये उनको भोगीजनोंके सहित त्यागकर ।

पुनःनराचछंद ।

विचित्र राग रंगजे स्वअग्रभागमें बने ।
कविंद आस पासमें रसाल वाक्यजे भने ॥
प्रवीन चारु कामिनी जिपृष्ठ भागमें लसें ।
अलंकृती मनोहरी मुखारविंद तेहँसें ॥ ४२ ॥
करे ग्रहीत चामरं विलाससों भ्रमावती ।
तिने करे करे हलें करेंध्वनी सुभावती ॥
अरोग देह आयुषा महा अशत्रु राजहै ।
जबे समीप आपने लखें इतो समाजहै ॥ ४३ ॥
प्रपंच भोग स्वाद में निशंकतो अबी रमो ।
भवे तथा नतौ कहाँ वृथा इते उतै भ्रमो ॥
असंग विश्व ते भवो अरण्य वास लीजिये ।
असं प्रज्ञात मै मना प्रवेश शीघ्र कीजिये ॥ ४४ ॥

श्लोकः ।

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरु
ष्वाधुना भूशय्यानववल्कलै रकरणै
रुत्तिष्ठयामोवनं ॥ क्षुद्राणामविवेकमूढ-

मनसां यत्रेश्वराणां सदा चित्तव्याधिवि-
वेकविह्वलगिरांनामापि न श्रूयते ॥ १४ ॥

पुनःकवित्त ।

भूमि सेज मूल फल मेध्य[1] नव वलकल,
करणे नपरे देव आगे रच धरेहैं ।
करो इने साथरति प्यारी प्रेम वारी मति,
उठोउठोतामें अव जामेंबिवैठरेहैं[2] ॥
तुच्छ अविवेकी शठ मूढ मन बोलकटु,
जाँके चित्तचिंता आगकर सदाजरेहैं ।
ऐसेधनवाननके नाममात्रकाननमें,
जाहि माहिं काननमें कवूं नाहिं परेहैं ॥ ४५ ॥

दोहा ।

शब्दखलोंके नामके, परें न करण मझार ।
ऐसे निर्जन वन विषे, बसो बुद्धि वर वार ॥ ४६ ॥

श्लोकः ।

पाताल माविशसि यासि नभो विलंघ्य

१ पवित्र नवीन वृक्षोंकी छालके वस्त्र । २ शीत उष्ण हर्ष शोक राग द्वेष इत्यादि द्वन्द्व ठरे अर्थात् जहां नहीं हैं ।

दिङ् मण्डलं भ्रमसि मानसचापलेन ॥
भ्रांत्यापि जातुविमलं कथ मात्मनीतं
तद्ब्रह्म नस्मरसि निर्वृतिमेषि येन ॥ १५ ॥

पुनःसवैया ।

शठजाहिंपतालकुशून्यकुलाँघकिशूनोफिरेंदिगमंडलधावत।
विनभाग्यमिलेनधनादिसुखंतवचंचलतादुखहेतुजनावत॥
ततब्रह्मनिजातमशुद्धमनाभ्रमसोपिकवीसुखहेतुनध्यावत
तवद्वंद्वजबेभवसिंधुतबेतवशांतभयेविनशांतनआवत॥

टीका—चौपाई ।

मूढकरें पाताल प्रवेशा । देख्यो चाहें देश फणेशा ॥
विष्णु सहस्रनाम नवतनको । भाषेशेषपिखोंतांतनको॥
फणसहस्रपरमणिअवतंसा ।भासहिंतमध्वंसकसमहंसा॥
ल्यावोंकिवेंएकमणिहरके। नाशों सबकलेश तबघरके॥
तहँतेमूढशून्यमुडआवहिं। पुनाकाशकोलाँघसिधावहिं॥
सुरपतिलोकविलोकनकारण ।सुधातडागकल्पतरुवारण॥
सुरभीनंदनवनउपवनको। दरशोंसुरनसाहितवाहनिको॥
वैसपाकशासनसिंहासन। करेकवनविधिविबुधहिंशासन॥

किवेंपरेममतहँपरचोजब । निजगृहपठवौंदिव्यभोगतब ॥
इतरीतोउतरीतोआवहिं।पुनिदिगमंडलकोउठधावहिं॥
दुर्गमाविषमअदर्शीठौरहिं। द्रव्यनिमित्तनिरंतरदौरहिं॥
चित्तचपलताकरअहनिशिमैं। भटकहिंव्यर्थकहाँदशदिशिमैं॥
ततनिर्मलब्रह्मातम रूपा । साक्षी शुद्धअसंग अनूपा ॥
भ्रमकरभीकबहूँकहुँरीते।नाहिंसिमरासिनिजब्रह्मअभीते॥
व्यष्टिसमष्टिउपाधिभेदकर । जीवेश्वरकीद्विधाभिधापर ॥
मायाऽविद्यामलमिलभासे । मुग्धोंके उरमाँहिंप्रकाशे ॥
तदपिसुविमललखेतिहँनिर्दुख ।जाँहिपिखेनशजाहिंनिखिलदुख
जासलाभकरलाभअपरना। जासुखकरसुखअवरनवरना॥
एकवारह्वै दर्शन जाको । देखन योग्यरहेपुनिनाको ॥
जासरूपह्वैकरभवमाँहीं । इतररूपपुनिहोवतनाहीं ॥
जोसवैंकसमानसमाना । तौमैंभी सोरम्यो न आना ॥
त्वंनसर्वतेअन्यतजाते। वहीरूपतवनिश्चयताते ॥९८॥
ब्रह्म सर्वमो पूरण जैसे । सर्वविषे तुम पूरणतैसे ॥
जातेश्रुतितवब्रह्मबखाना । ताते तववपुयाँभवनाना ॥
भूतनकोहैपूतअमूर्तन । जडपरिणामिनाशसमत्रिदजन॥

१ यह शरीर पंच भूतोंका पूत अर्थात् पुतला है ।

चेतनइकरसअव्ययआतम। ताविनजडसंघातअनातम॥
सतो अंशभूतनकी जोहै । तातेअंतःकरण भयोहै ॥
रागद्वेष कोघोष[1]सुजाते। सोपिरावे[2]रो रूपनताते ॥६१॥
कारजद्वाराजिहँअनुमाना। नातरसोप्रत्यक्ष अभाना ॥
बिंबोपा[3]धिकोकारणजोहै । कार[4]ण देहनआतमसोहै ॥
तीनों[5]पाधिविहीनो जोऊ। रूपतुमारो निश्चय सोऊ ॥
नहिंततब्रह्मरूपनिजध्यावें । जाकरमूढमुक्तितूपावें ॥

दोहा ।

रेमन तज निजबाहिर्गति, अंतर्वर सुखहेत ।
अंतर्मुख विन सुखनहीं, विदित सनातननेत ॥६४॥

श्लोकः ।

चेतश्चिंतयमारमांसकृदिमामस्थायिनी-
मास्थयाभूपालभ्रुकुटीकुटीरविहरव्यापा
रपण्यांगनाम् ॥ कंथाकंचुकितःप्रवेश्य-
भवनद्वाराणिवाराणसी रथ्यापंक्तिषु-
पाणिपात्रपतितां भिक्षामपेक्षामहे॥ १६ ॥

---

१ घर । २ तुम्हारा । ३ स्थूल तथा लिङ्गशरीर रूप उपाधिद्वय ।
४ सुषुप्तिअवस्था । ५ कारण लिङ्ग और स्थूल ।

पुनःकवित्त ।

चंचलाको मताचित चंचलाकरति चित्त,
चंचलाकोचीनचित्त चंचलाकेवतहै ।
भूपनकी भ्रुकुटीकुटीमै वारबधूवत,
गतागतकेव्यापार विचविचरतिहै ॥
काशीजूकी वीथिनके जूथनेमैधामग्राम,
ताके द्वारेअटोंओढ़ कंथा एमोमतिहै ।
ताते पाणि पात्रपरे भिक्षा तासों प्राणधरें,
कमला कीरति लोक कमला करातिहै ॥ ६८ ॥

दोहा ।

श्रीहरके श्रीहर पुरी, वाराणसिको वास ।
जीवत भुगतमुकतमरे, करे यहोचित तास ॥६६॥

श्लोकः ।

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधि स्तीव्राति-

---

१ हेपुरुष चंचल जो लक्ष्मीहै उसका तू चिन्तन मतकर वह वृथा तेरे चित्तको चंचल करेगी परन्तु तेरेको मिलेगी नहीं और चित्तका यह स्वभाव है कि यह लक्ष्मीको देखकर तत्स्वरूप होजाताहै॥ परन्तु वह राजालोगोंकी भौहांरूपी कुटियामें वारवधू वेश्याकी तरह इधर उधर भ्रमण करती है अर्थात् तेरेको मिलना उसका बहुतही कठिनहै ।

तीव्रं तपः कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनंमंडनम्॥आसन्नं मरणंचमंगल समं यस्यां समुत्पद्यते तां काशीं परिहृत्य हंत विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते॥ १७॥

पुनःकावित्त।

उपवनो मध्यासिद्ध भोजन विविधविध,
तपवृद्धहूँतेवृद्ध जासमै प्रधानहै।
पटलकौपीनहीको अप्रमाणपटनीको,
भीखहीको रमणीको रटनोप्रमाणहै॥
चारखाणी प्राणी जामें मरके नफेर जामैं,
आवैढिग मृत्युतामें मंगल समानहै।
छोरे ऐसी काशी कैसे सुधी और ठौर बैसे,
कैसेभयेदेव यम हासीको सथानहै॥ ६७॥

दोहा।

अन्न त्यजहिं वाराणसी, तऊ नखेद कछु मोहि।
त्यजहिं सुजन लखमुक्तिप्रद,दुसह दुःख ममओहि६८

रेमन तू तो त्यागजिन, मुक्ति द्वार हरद्वार ।
सिमर सरित समरारितिहँ, जगजीवन दिनचार ६९॥

श्लोकः ।

नायं ते समयो रहस्यमधुनानिद्रातिना थो यदि स्थित्वा द्रक्ष्यसि कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ॥ चेतस्तानपहाय याहि भवनंदेवस्य विश्वेशितुर्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषंनिःसीमशर्मप्रदम् १८

पुनःकबित्त ।

भूपनकीचाहिकरे काहेचित जाहि घरे,
गये छरी दार हरैंसतकारजोतहैं ।
नारेइहकाल महीपालगुरुमंतेमाहिं,
अजेसमोनाहिं नरनाथ सुखीसोतहैं ।

---

१ अरे नीच भिखारी यह काल तेरा नहींहै क्योंकि राजा इसकालमें (गुरुमते) किसीविचार विशेषमें हैं । दुबारागये तो अभी समोंनाह क्योंकि नरनाथ सुखपूर्वक आरामसे सोरहे हैं ॥ तेरे भीखमांगनेके वचन जब सुनेंगे तो तेरेको वह क्रोध दृष्टिसे देखेंगे । इत्यादि अनेक तरहके कटु वाक्य जिनके द्वारोंपर सुनेजातेहैं।

सुने बैन तेरे जब क्रोधनैनहेरेप्रभु,
जाके पौरे ऐसे कौरे वाकको उदोतहैं।
छोरताकेपौरदौर मोक्षठौर काशीमाहिं,
ध्वना न कठोर जहाँ दौरप[1] अगोतहैं ॥ ७० ॥

दोहा।

अप्रमाण आनंदप्रद, पुनः जन्म जिहँ हान।
वसो मना आनंद वन, तज नृप कृपणस्थान ७१ ॥
अलंभरतवैराग्यको, प्रथमोऽध्याय अनूप।
स्वमन शिष्य को शिक्ष मत, दईस्वामिसमभूप७२॥

दोहा।

द्वितिये पश्चात्तापके, भाषे दशक श्लोक।
जाके श्रवण मननकरे, नष्ट होहिं मन शोक १॥

श्लोकः।

नध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसार
विच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटु

---

१ जहांके दौरप अर्थात् द्वारपाल गण अगोत अर्थात् जाति गोत्रके पक्षपाती नहीं हैं अथवा दौरप शब्दसे दौरे हुयेके पालक महादेव पक्षपाती नहीं हैं।

धर्मोपिनोपार्जितः ॥ नारीपीनपयोधरोरु युगलं स्वप्नेपिनालिंगितं। मातुःकेवल मेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥१९॥

कवित्त।

पादकंज शिवजीके न अराधे हम नीके,
कारणउधारजीके रमणीके चीनमै।
नांकपौर ताकनके धाकनमे पुण्य दक्ष,
तेपि न एकत्र कछु कीन भागहीन मै॥
उभैपीन कुची नारी भारी रूपगुणवारी,
स्वपने मझारीभी आलिंगन न कीनमैं।
माता को यौवन वन तास नाश हेतु जन,
केवल कुठार होय खोये सुख तीनमै॥२॥

श्लोकः।

विद्या नाधिगता कलंकरहिता वित्तं च नोपार्जितं शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न संपादिता॥आलोलायतलोचना

१ स्वर्ग। २ कठोर।

युवतयः स्वप्नेपिनालिंगिताः कालोयं पर-
पिंडलोलुपतया काकैरिवप्रेरितः ॥ २० ॥

पुनःनराचछंद ।

अदोष वेद बोधको अधेन मैंन कीनहै ।
नसेव मात तात की मँझाराचित्त दीनहै ॥
दया नदीनजंतुपै करी मनाकमैंकबी ।
न न्यायवंत द्रव्य भी इकत्र कीन लौंअबी ॥ ३ ॥
विशाल नील कंजनैन चंचले हृदेप्रिया ।
नकीन सोपनेपि मैं अलिंगनं महा त्रिया ॥
प्रपिंडपैसलोभ काक योंसमो गतोहमें ।
विकाश मात आस्य कंज नाशको करी जमें ॥ ४ ॥

श्लोकः ।

धिक्तज्जीवितमापदां हि निलयंपित्रासवं
धूज्झितं दीनानाथ जनोपकारकरणव्या-

---

१ थोड़ीसी । २ अभीतक । ३ स्वप्नमें । ४ केवल पराये पिण्डोंपर लुब्ध होनेवाले काकों की तरह हमारा व्यर्थ समय गयाहै । इसलिये हम अपनी विकाशमाता अर्थात् कीर्तिमाताके मुखकमलके विनाश केलिये (करी) हस्ती रूप पैदा हुये हैं ।

पारदूरीकृतम् ॥ मंदीभूतशशांक शेखर पदद्वंद्वारविंदस्मृतिं व्यालोलायतलोचनास्तनतट प्रश्लेष विश्लेषितम् ॥ २१ ॥

पुनःकवित्त ।

ता जीवनको धिक्कार जोऊ दुःखको अगार,
पितृ बंधु परिवार कर नित जित्तहै ।
दीनानाथ जनोपर उपकारकोव्यापार,
ताको त्रिसकार जाँमझारनित्य थित्तहै ॥
जाके भाल विषे इंदु द्वंद्वतापदारविंद,
ताको ध्यान जा[१]मोमंदभूतनिंदानित्तहै ।
अ[२]लंलोललोचन विशालकुचतटत्रिया,
ताको मेलाभीनभयोयोंहीवेलावित्तहै ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृंददमनी विद्याविनीतोचिता खड्गाग्रैः करिकुंभपीठ

१ जिस जीवनमें ऐसे शंकरका ध्यान मन्द अर्थात् नहीं है और भूत प्राणियोंकी निन्दा जिसमें नित्य होतीहै। २ भूषित तथा चंचलहैंनेत्र जिसके ।

दलनैर्नाकं न नीतं यशः ॥ कांताकोमल पल्लवाधररसः पीतो न चंद्रोदये तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ॥ २२ ॥

पुनः कवित्त ।

वादीवृंदके दमन वारी प्यारी संतनको
ऐसी, विद्याकोशलोक पढ्यो मैन लोकमैं ।
खड्गके अग्रकर करीकुंभ पीठनको,
पीठके न यश नीठ[1] कीनो सुरलोकमै ॥
कांताके अधर मृदु दलवत रसनिधि,
सोन चूसे उदेविधु स्वेछित[2] अशोकमै ।
ज्ञान नाक नारी तीनो को न रसलीनो अहो,
वृथा युवाक्षीनो जैसेदीप शून्य ओकमै[3] ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

अजानन्माहात्म्यं पतति शलभस्तीव्रद-

---

१ स्थित । २ अपनी इच्छाके अनुसार शोकसे रहितहोकर । ३ घर

हने समीनोप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नाति पिशितम् ॥ विजानंतो प्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्नमुंचामः कामान हह-गहनो मोहमहिमा ॥ २३ ॥

पुनःकबित्त ।

दीपमें पतंगपरे जरेन प्रतापजाने,
मीनस अज्ञानेभखे कुंडीमिले मांसको ॥
गजगजी हेत पर्यो खात खात अंकुशको,
रागमेंकुरंग राग[1] करेनिजनाशको ।
पंकज की गंध बीच नीचभृंग मीच गहे,
इति आदि अज्ञ नाश करेंनिज श्वासको ।
अहोहा सघन महामोहको प्रताप लहा,
शुभाशुभ जानों पैनहानो भोग आशको ॥ ७ ॥

दोहा ।

मोह[2]महातम रूपको, गहन महातम आहि ॥

१ रागमें (कुरंग)हारिणका रागकहिये प्रेमहै ।२ महा अज्ञान रूप मोहको धारण करना हमारी मूर्खताहै इस मोह रूप अन्धकारने अनेक महात्मा ओंको जिनके पास विवेकरूप सूर्य्यका उजाला नहीं है अन्धकूपमें डालाहै ।

मोहेपुरुष महातमा, जिहँविवेक रबि नाहिं ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

ज्ञानंसतां मानमदादिनाशनं केषांचिदे-
तन्मदमानकारणम् ॥ स्थानं विविक्तं
यमिनां विमुक्तये कामातुराणामति
कामकारणम् ॥ २४ ॥

सवैया ।

एश्रुति ज्ञान सुजाननके अभिमान मदादि विकार निवारे
केचित मोसम नीचनके चितमो बहु मान मदादि कधारे
शून्य यथा मठ साधुनको अतिमोक्षको साधन दोष प्रहारे
सोहमसे मदनातुरकोअति कामको कारण वामं समारे९

श्लोकः ।

अवश्यं यातार श्चिरतरमुषित्वा पि
विषया वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो
यस्त्वयममून् ॥ व्रजंतः स्वातंत्र्याद्तुल

१ सुन्दरस्त्री ।

परितापाय मनसः स्वयं त्यक्ता ह्येते शम-
सुखमनंतं विदधति ॥ २५ ॥

पुनः कबित्त ।

पुण्यनके वश्यते सुभोगचिरवसते,
निमित्तनशे नशते मर्याद आदि दिनमै ।
कौनभेद भोगन के भेदमै नतजे जन,
एकको वियोगतो अवश्यहोत तिनमै ॥
स्वते जब जावें तब मनको तपावें भारी,
मोक्षे तिने आपताप मोक्षे तिने क्षणमें ।
ऐसे मोक्ष प्रतिबंधी विषे लखेमैं सबंधी,
को कुभागी विनमैं जो रागी होत इनमै ॥ १० ॥

श्लोकः ।

भोगा नभुक्ता वयमेवभुक्ता स्तपो न तप्तं

१ पुण्योंके नाश होनेसे भोग नाशहोतेहैं । २ या भोक्ता मरजायगा या भोग स्वयं नष्ट होजायँगे । ३ जिसको विषय छोड़ जातेहैं वह पुरुष जलता रहता है और जो पुरुष विषयोंको स्वयं छोड देता है उसके तीनों ताप दूर हो जाते हैं । ४ ऐसे मोक्षके विरोधी विषयोंको मैंने अपने सम्बन्धी समझा ।

वय मेव तप्ताः ॥ कालो न यातो वय-
मेव याता स्तृष्णा नजीर्णा वयमेवजीर्णाः

पुनः मात्रक सवैया।

अहो सखे मैं भोग न भोगे भोग्यो गयो आप मैं मूढ ॥
क्रम क्रम हमरोप्राक्रमसगरो लीनो भोगों भोग अगूढ॥
भुक्ता जान भोगमैं भोगे उलटा भोगों भोग्यो मोहि ॥
शिश्नोदर पर भयो नचीनो कीनो मैं निजापसोंद्रोह ॥
इंद्रिय गणके संयम तपको ताप्यो मोहिं नकबहूँठीक॥
काम क्रोध लोभादिअग्निकरमैं संतप्त भयो अबतीक॥
कालचक्रवतभ्रमत सर्वदा शीतउष्णवपु धर विख्यात॥
समान बीत्यो होंहींबीत्यो भयो विलक्षण ममसंघात ॥
तृष्णा जीरण भई न अबलौं मैंहूँ भयो जरजरो आप ॥
वृद्धभयों दुर्बुद्धि गई नहिं मेउरमें यहि गुरु संताप ॥
अधमकाममोअवधिगईसभलब्धभयोअबलौंकछुनाहिं॥
हहा न हरके पाँ पकरे हर पापकरे मैं अहनिशि माहिं ॥

---

१ अर्थात मेरे शरीरके अवयवोंका समूह वलीपलितादि अनेक विकारोंवाला होनेसे आगेसे बहुत विपरीत होगया है ।

श्लोकः ।

आघ्राय पुस्तकं धन्याः सर्वं विद्म इति-
स्थिताः ॥ शतवारं पठित्वापि हा न
विद्मो जडा वयम् ॥ २७ ॥

पुनः सवैया ।

फूलनिबंध सुगंध रहस्य कुधारतजेसबस्वातमचीनो॥
तेधन याविधिराजतजे भवबंधनवृंदकियोजिहँक्षीनो॥
मैं शठते शतवार पठेनहिंस्वातमचीनुभयोमदपीनो॥
हानरकेतनुमोवसकेनरकेवसबेकु पराक्रमकीनो ॥१४॥

श्लोकः ।

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियःकुर्वंत्यहोदु-
ष्करं यन्मुंचंत्यपि भोगभांज्यपि धना-
न्येकांततो निःस्पृहाः ॥ संप्राप्तानिपुरा
न संप्रति नच प्राप्तौ दृढप्रत्ययो वांछा
मात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्ता
वयम् ॥ २८ ॥

---

१. मनुष्य शरीर धारकर मैंने नरकमें वसने का प्रयत्न किया है ।

पुनः कवित्त ।

ब्रह्मज्ञानके विवेकी विमल मनीषा[1] जाँकी,
अहो दुहक्रिया ताँकी पायो द्रव्य त्यागेहैं ।
भोगनकी राशि को अवाँस[2]धनते उदास,
जाँते भोगों तेनिराश आतमानु रागेहैं ॥
आँदि[3] मैं न प्रापत अप्रापत इदानीवित्त,
दृढ न प्रतीति हम आगे कछु पागेहैं ।
इच्छा मात्र धनोके इकत्र को न त्यागसकें,
वही बडभागे हैं हमारे भागभागेहैं ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेककवारं
शय्याच भूःपरिजनो निजदेहमात्रम् ॥

---

१ विचारवाली बुद्धि । २ घर । ३ औरहम कैसेहैं कि इससे प्रथम गतआयुमें हमको कभी कहीं कुछ नहीं मिला और अबभी हमारे पास कुछ नहीं है और आगेको कहींसे कुछ मिलनेकी भी उम्मेद नहीं है किन्तु हमारे मनमें धन एकत्र करनेकी इच्छा मात्र है परन्तु उस इच्छाका हम त्याग नहीं कर सकते इसलिये वे विरक्त महात्माही बडे भागोंवाले हैं जिन्होंने प्राप्त धनको छोड़कर आत्मज्ञान संपादन कियाहै और हमारे भाग्य तो हमारेसे भागे हुए अर्थात् नष्ट प्रायही प्रतीत होते हैं ।

वस्त्रं च जीर्णशतखंडमयी च कंथा हाहा
तथापि विषया न परित्यजंति ॥ २९ ॥

पुनः अनंगशेखर छंद।

जाचजाचके अहार नाहिं सोपि स्वाद वार,
लाभ होत एकवार भूखतापकोअवार।
शैन भूमिपै बनो न साक सैन को गनो,
शरीर मात्र पोखनो नजोबनो सुपैदवार ॥
क्षीण चीरगोदरी अनेकलीर सोंकरी,
करी उजार झौंपरी अधेन ग्रंथ वार वार।
हाय हाय भोगचाहि नाहिंमे तजेअजेपि,
मोर चित्तबैलको सवार बैलकेऽसंवार ॥ १६ ॥

दोहा।

अलं भरत वैराग्यको, भयो दूसरोऽध्याय।
निंद्यो भूपति स्वापको, कल्यानारिसुभाय ॥ १७ ॥

---

१ हे बैलकी सवारी करनेहारे शंकर! आप कृपाकर मेरे चित्तरूपी बैलको सुधारिये। २ राजाने इसमें अपने कल्याणके विरोधी स्वभावकी निन्दा करी है।

दोहा ।

अब तृतीय अध्यायमें, आठश्लोक उच्चार ।
वरणे महिमा कालकी, सुनो जनो उरधार ॥ १ ॥

श्लोकः ।

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रप-
यसां कृते किं नास्माभिर्विगलितविवेकै-
र्व्यवसितम् ॥ यदाढ्यानामग्रेद्रविणमद
निःसंज्ञमनसां कृतंवीतव्रीडैर्निजगुणक-
थापातकमपि ॥ ३० ॥

कवित्त ।

इनेप्राणत्राणकाज केकेमैंनकीने काज,

---

१ इन कमल पत्रगत जलबिन्दुकी तरह शीघ्र विनाशी प्राणोंकी रक्षाके लिये मैंने कौन २ अकार्य्य नहीं किये हैं मैंने अपनी लाजको त्यागकर धन मदान्ध पुरुषोंके आगे उनके तथा अपनी अनेक प्रकारकी प्रशंसा करी मैंने यहांतकभी कहा कि हे देव ! मैंतो गुणोंकी खानि हौं और आप इन्द्र जैसे ऐश्वर्यवाले महाराज हैं इसलिये मेरे जैसे पात्रको दान दिये का आपको कुरुक्षेत्रके सूर्य्यग्रहण जैसा फल है इन प्राणोंके लिये मैंने इत्यादि अनेक कार्य्य किये शासनाभी सहारी परन्तु शोकहै फिरभी मेरे प्राण नहीं रहते हैं ।

कंजदलपै विराज कंकणी ज्योंहतहै ।
धनमद कर जाँके अंधमन आगेताँके,
बके गुणबाँके निज तजी लाज मतिहै ॥
हौंतो गुणखानि तुम शक्रके समान,
कुरुक्षेत्रग्रसेभानम्रोमैं दान तदवतहै ।
कीनीमैं इत्यादि कृति शासन निमित्त पर,
सासनाभी सही पर सास ना रहतहैं ॥ २ ॥

श्लोकः ।

वयंयेभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलुते
समं यैः संवृद्धाः स्मृति विषयतां तेपिग-
मिताः ॥ इदानीमेतस्मः प्रतिदिवसमा-
सन्नपतनाद्गतास्तुल्यावस्थां सिकतिल
नदी तीर तरुभिः ॥ ३१ ॥

पुनः कवित्त ।

जाहिं मातपितातेमै भयो उतपत ते तो,
कालवश भये चिरकाल बीत गयोहै ।
समवैस वारे द्वारे स्मिृति सिधारे सारे,

रहे हम शेष देह वृद्ध वेष लयो है ॥
नदीरित तीर पर तरुयों शरीर भयो,
प्रति दिन मृत्यु तीर तीर अब अयोहै ।
गिले काल व्याल सम मेंडकके अजेहम,
भजें भोग मच्छरोंको मोसों मूढ जयोहै ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

तपस्यंतःसंतः किमधि निवसामः सुर-
नदीं गुणोदारान् दारानुत परिचरामः
सविनयम् ॥ पिबामः शास्त्रौघान् द्रुतवि-
विध काव्यामृतरसान् न विद्मः किंकुर्मः
कतिपयनिमेषायुषिजने ॥ ३२ ॥

पुनः त्रिभंगी छंद ।

हैकछुक निमेषा हमरी वैसा लखों नकैसा कामधरों ॥
सुरसरिके तटपर कुटीआठकर ताँमैंतपकरतापहरों ॥
गुणजाँहिंउदारेअसगणदारें ममरुचिधारेंतिहँविचरों ॥
गणग्रंथनमोउतकाव्यन मो युतकथारसामृतपानकरों॥

---

१ मेरे जैसा और दूसरा मूर्ख कौनहै ?

दोहा ।

तप त्रिय सुधा असिद्ध त्रय, निमिष आयुषा माँहिं ।
दुःख रूपभवते अबे, विन निराश सुखनाँहिं ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

यत्रानेकः क्वचिदपिगृहे तत्रतिष्ठत्यथैको
यत्रा प्येकस्तदनुबहवस्तत्रचांतेनचैकः ॥
इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन् द्वा-
विवाक्षौ कालः काल्या सह बहुकलः
क्रीडतिप्राणिसारैः ॥ ३३ ॥

पुनः कवित्त ।

काल भगवान वृंद कलावान कालीसंग,
खेलतचौसार चारदिगहूँकीधरके ।
चार खाणी प्राणी गोटा रैनदिन पासे जोटा,
मारत अचूक चोटा दंपती अडरके ॥
जहाँएक गेह मों अनेक तहाँ एक रहे,
एकते अनेक ह्वै क्षणेक एकूँसरके ।

कालकाली खाली कीने लोक लोकपालीसने,
चौपट नहाली अजे शेषलोक करके ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

आदित्यस्य गतागतै रहरहः संक्षीयते जीवितं व्यापारैर्बहुकार्यभार गुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥ दृष्ट्वा जन्मजरा-विपत्तिमरणं त्रासश्चनोत्पद्यते पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरामुन्मत्त भूतं जगत् ॥ ३४ ॥

पुनः कवित्त ।

भानहुँकी गतागत कर दिन दिन प्रति,
प्राण मोरेघटें जैसे खोरे घटे पानिहै ।
ग्राम कामो करसारे भवके व्यापार भारे,
ताँमो मत्त मतवारे मृत्युको न ध्यानहै ॥
जाते[1] जरा पात उतपातपेख भीतजात,

---

१ यह प्राणी अनेकोंके जन्म जरा मरणादि उत्पात देखता भी उनको त्याग देताहै अर्थात् जैसे दीवारमें सूर्य्यका प्रतिबिम्ब नहीं पडता ऐसेही यह जीवभी किसी वार्ताको चित्तमें नहीं लाता ।

चीतमो नजात जैसे भीतमोन भानहै ।
मोहरूप मदिरा प्रमाद कर पानकीनो,
बौराभयो भवगौरा भवको न ज्ञानहै ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरा यौवनं हंतांगेषुग्रुणाश्च वंध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना ॥ किंयुक्तं सहसाभ्युपैति बलवान् कालः कृतांतोऽक्षमी ह्याज्ञातं स्मरशासनांघ्रि युगलं मुक्त्वास्ति नान्या गतिः ॥ ३५ ॥

पुनः मात्रक सवैया ।

अहो विचित्र मनोरथ सगरेमे उरमें संभव फल हीन ॥
इने न आदि अंत मधचीनों जल तरंग इव उपजत लीन॥
अनुँजाग्रत बालादितीनत्रिकमैनहीनकछुसुखपतिक्षीन॥

१ अनुजाग्रत् अर्थात् अनुक्षण जाग्रत मनोरथ रहते हैं बालादि तीनोंके त्रिकमें अर्थात् बालपनकी जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्तिमें तथा युवापनकी जाग्रतादि तीनोंमें एवं वृद्धपनकी जाग्रतादि तीनोंमें (नहीन) हीन अर्थात् कम नहीं होते यदि होतेहैं तो कुछ सुषुप्तिमें क्षीण होतेहैं ।

जराकीनयौवन कोभोजन प्राक्रमहीन भयोमैं दीन॥८॥
बांझ गुणज्ञोंमोतनमैगुणअफल भये सबज्योंत्रियबाँझ ॥
कालक्षमाविनबलीकृतां[1]तोउपग्रों[2]पति अबहनेंकिसाँझ ॥
सहसा[3]युक्तिमुक्तिहितकोशुभजाँकरमनकोसँहँसाजाय॥
हरकेपाय कंज युगहरके अवरश्रेयको कौनउपाय ॥९॥

श्लोकः ।

भ्रातःकष्ट महो महान्सनृपतिःसामन्त-
चक्रं चतत् पार्श्वे तस्य चसापिराजपरिष
त्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः॥ उद्रिक्तः सचरा-
जपुत्रनिवहस्तेवन्दिनस्ताः कथाः सर्वं
यस्य वशादगात् स्मृतिपदं कालाय
तस्मै नमः ॥ ३६ ॥

पुनः कवित्त ।

जाँके वामे दाहने सुमंत चक्र होते अग्र,
राजनकी सभाथी मयंक मुखी नारीया ।
भूपनके पुत्रथे विचित्र वीर अहंकारी,

---

१ नाशक । २ समीप आया । ३ शीघ्र ।

w.o. 127 / 14.6.61

वृंदबंदी जनहोते वंशके उचारिया ॥
अहो भाई भारी कष्ट भारी भूप भये नष्ट,
सिमृति पदे प्रविष्ट जाँकी कथा भारीया ।
हिंसक प्रपंच सविरंचको असंग पुना,
ताहिकाळ वीरको जुहार वार वारीया १०

सोरठा ।

अहो भ्रात अति कष्ट, जास काळकेवशिभये ॥
भये प्राक सभनष्ट, गयेसिमृति पथ तिह नमो ॥११॥

टीका–अर्द्ध भुजंगप्रयात छंद ।

जिसे काल गाले । सुभूपाल माले ॥
जिसे आसपासे । सुमंत्री प्रकाशे ॥ १२ ॥
महावीर स्याँने । सभी नीति जाँने ॥
पुनजाँहिं आगे । सभा राज लागे ॥ १३ ॥
चलें अग्रजाँके । तने भूप बाँके ॥
युवा द्रव्य माते । सहंकार जाते ॥ १४ ॥
हुते चार नग्रे । सभोगा समग्रे ॥
तहाँ राजधानी । हुती शक्र सानी ॥ १५ ॥
त्रिया इंदुतुंडी । मनो कामकुंडी ॥
जटी लाल मोती । घनीधाम होती १६ ॥

चले भाट गाते । चिरंजीव दाते ॥
जिने कोप आगे । सभै भूप भागे ॥ १७॥
शिरे छत्र छाजे । दिशा चार भ्राजे ॥
करी[1] है सवारी । करीहैसवारी ॥ १८ ॥
इने आदि राजे । हुते सासमाजे ॥
सभी काल मारे । गने कौन सारे ॥ १९ ॥
भयेते पुराने । नको ताँहिजाने ॥
कथाजे पुराँने । सुने नाम जाने ॥ २० ॥
पुनःतीनलोकी । सुनीऔविलोकी ॥
निमेषेक माँहीं । गिले काल तांहीं ॥ २१ ॥
युवा वृद्ध छोरे[2] । कहूँको न छोरे ॥
नमो तास काले । जिसे सर्व गाले ॥ २२ ॥

दोहा ।

हने हनत पुन हनेगो, उत्तम मध्यम मंद ।
गने बरोबर सर्वको, ताँतेताँको वंद ॥ २३ ॥

श्लोकः ।

प्राप्ताः श्रियः सकल काम दुघास्ततः किं

---

१ करी हस्तीहै घोडे सवारकर । २ छोकरे ।

दत्तंपदं शिरसि विद्विषतांततःकिम् ॥
सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततःकिं
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततःकिम्

पुनः कवित्त।

जिनो धनो कर सभ मिले मनोकामजब,
ताँको भयो सिद्ध तब कहाँलाभमानहै।
अरिन के शिरपर चरणको धार कर,
कहाँभयो डार डर सोयोसाभिमानहै ॥
जौसनेही जनोंधनों कर मानकीनो घनों,
कहाँ भयो ताँहिं भनोंतूँतो कुलभानहै।
कलप पर्यंत भोग भोगे जंतु कहा होग,
जाँते अंत नाशीलोक सने कार[1]कानहै ॥ २४ ॥

दोहा ।

भयो काल भय प्रगट कर,तृतिय इति श्री आप।
वैरागादि सुतहिं जने, हने सर्व भय ताप ॥ ३ ॥

---

१ ब्रह्मा विष्णु आदि कारकोंके समेत यह लोक अर्थात् संसारविनाशीहै ।

दोहा ।

उत कंठा निज चित्त की, कहें चतुर्थोऽध्याय ।
करतविनय नृप शंभु पहि, सात श्लोक बताय ॥ १ ॥

श्लोकः ।

एकाकीनिः स्पृहः शांतः पाणिपात्रोदिगं-
बरः ॥ कदा शंभो भविष्यामि कर्म निर्मू-
लने क्षमः ॥ ३८ ॥

तोटक छंद ।

इकएकनिसस्पृहशांतमना ॥ करपात्रपवित्रदिशावसना ।
करमा निरमूलनमैनिपुना ॥ शिवजूकबह्वैममऐषदिना ॥

श्लोकः ।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्ना धवलित तलेक्वापि
पुलिने सुखासीनाःशांत ध्वनिषु रजनीषु
द्युसरितः ॥ भवाभोगोद्विग्नाः शिव शिव
शिवेत्यार्त्त वचसा कदास्या मानन्दोद्गत
बहुल बाष्प प्लुत दृशाः ॥ ३९ ॥

---

१ अकेला तथा इच्छा रहित ।

पुनः वही कवित्त ।

शांतध्वनी यामिनी की चाँदनी अमित दुत,
तासों गंगा तीर तलो ऊजलो लसतहै ।
ताँपै सुखी वसूकहूं शिव शिव शिव कहूं,
ऐसी वाणी भनो जैसे प्राणी दुखारतहै ॥
प्रेम उदेपाथ साथ दृगभिग जाहिकब,
आवैं साह साहसे रोमांच पुलकतहै ।
भवके आभोगनते भयो अब उदवेग,
करो ऐसी विधि वेग ऐसी मोरी मतिहै ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

स्नात्वा गांगैः पयोभिः शुचिकुसुमफलै-
रर्चयित्वा विभोत्वां ध्येये ध्यानं निवे-
श्याक्षितिधर कुहरग्राव पर्यंक मूले ॥
आत्मारामः फलाशी गुरु वचन रत-
स्त्वत्प्रसादात्स्मरारे दुःखान्मोक्ष्येकदा-
हंतवचरणरतो ध्यानमार्गैकचस्त्रैः ॥४०॥

पुनः कवित्त।

नायकै नवाँऊं गंगा पाथ साथ नाथतुमे,
शुचि फूल फलों कर रुचि धर ध्यावेंगे ।
ध्यान योग ध्यान तेरो तामैं लागे मनमेरो,
शैल दरी शिलाके पर्यंक पै सुहावेंगे ॥
सुखीनिजानंदकर फलाहारी रतितर,
गुरोंकेवचनमों चरण थारे भावेंगे ।
समरारी थारी कृपा अनुसारे सारे दुख,
सारेहम जदोंसोंदिहारेकदों आवेंगे ॥ ४ ॥

श्लोकः ।

अतिक्रांतः कालो लटभ ललनाभोगसु-
भगो भ्रमंतः श्रांताः स्मः सुचिर मिहसं-
सार सरणौ ॥ इदानीं स्वः सिंधोस्तट
भुवि समाक्रंदन गिरः सुतारैः फूत्कारैः
शिवाशिवाशिवेतिप्रतनुमः ॥ ४१ ॥

---

१ जलावें ।

पुनः कवित्त।

सुंदरीके भोगनमें सुंदर एकाल गयो,
धारके भवोट भव्यो जग मग चिरमै।
पायो अतिखेद गयो थाक निर्वेद[1] अब,
चहों गंगातीर पर बहों उतागिरिमै ॥
तुंग होंहितनवार नैनपूरेप्रेमवारि,
कंठदबेनामोचार गंगा जाँके शिरमै।
भोगनरकागनिके हेतुकोन भजों अब,
करों ऐसीविधि भवों भवमैनफिरमै ॥ ८ ॥

श्लोकः।

अनावर्ती कालो व्रजति सवृथा तन्नगणितं दशास्तास्ताः सोढाव्यसन शतसंपात विधुराः ॥ कियद्वावक्षामकिमिव बत-नात्मन्यपकृतं वयो यावत्तावत्पुनरपि तदेवव्यवसितम् ॥४२ ॥

---

१ विरक्त हुआचाहताहों।

पुनः कवित्त ।

काल एपुनागमीन सोतोभयो वृथाक्षीण,
तनचीन मनदीन नारीरमणीक मैं ।
सैकरे कलेशोंके प्रवेशों कर व्याकुलीजो,
सोसोदशा सही सहीकहाँकहाँतीकमैं ॥
जोजो करों काम सोसो देतदुखग्राम मोकों,
अहो वही अपकाम करों अब तीकमैं ।
प्रबल अदृष्ट दुष्ट जोरत अनिष्ट माँहिं,
याके शाँत विना नाहिं शांति चीनों ठीकमै ॥६॥

दोहा ।

नष्ट अदृष्ट न ज्ञानविन, ज्ञान न विन वैराग ।
ताँते भवनिर्वेद प्रद, जाँते भवदुख त्याग ॥

श्लोकः ।

अहौ वा हारेवा बलवतिरिपौ वा सुहृदि वा मणौवा लोष्ठेवा कुसुमशयनेवा दृषदिवा ॥ तृणे वा स्त्रैणेवा ममसमदृशो यांति दिवसाः क्वचित्पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः ॥ ४३ ॥

पुनः सवैया ।

पुण्यवने वस कौनोदिनेभनोभोशिवशंभुजटीसमरारी॥
नागन मोतिनहारनमो उतशत्रुबलीमें सुमित्रमझारी॥
माँहिं मणीमृणपिंडविषे मधफूलोंकेसाथरपाथरभारी॥
वात्रिणबीच त्रियाणविषे सबमेंसम ह्वैकबद्दष्टिहमारी ॥

श्लोकः ।

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रांग
तस्य ॥ किंतैर्भाव्यं ममसुदिवसैर्यत्रते-
निर्विशंकाः कंडूयंते जरठ हरिणाःशृंग-
मंगे मदीये ॥ ४४ ॥

पुनः कवित्त ।

गंगातीर पर हिमगिरी शिला पर हम,
बाँधे पदमासनको मनइंद्रै जीतके ।
ब्रह्मके सुध्यान की अभ्यास विधिसों निवास,
योग निद्रा माँहिकरों हरों ताप चीतके ॥
जरठकुरंगकरें शृंगो संग कंडू मोहिं,

सुखसों अभीत[1] मोकों जाने समभीतिके[2]।
पारवतीनाथमें अनाथके अभीतिवारे,
उतमादिहारे कब आवें ऐसी रीतिके॥

दोहा।

निजविषाण कर हरण कब, संघरसहिं ममदेह।
मोहिखबरहे हरनह्वै, कबह्वै मम असदेह ॥ १० ॥

श्लोकः।

कदा वाराणस्याममरतटिनी रोधसि वसन् वसानःकौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलि पुटम् ॥ अयेगौरीनाथ त्रिपुरहर शंभो त्रिनयन प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिष मिव नेष्यामि दिवसान्॥ ४५॥

पुनः कवित्त।

काशीगंगाकेकिनारे भवते किनोरहोके,
कदोंवसों वसनकौपीन एकधारके॥
दोऊहाथ जोरकर नायमाथ नमो करों

---

१ निडर। २ दीवार सदृश।

मृदु वाणी साथ ररों नाम समरारिके ।
भोप्रभो भवानीवर शंकरत्रिनेत्र हर,
त्रिपुरारी चंद्रधर भवभयहारिके ।
क्षणसमदिनसब मोरे बीत जावें जब,
ऐसे अहआवैं कब कहोकृपाधारके ॥ ११ ॥

श्लोकः ।

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणा पूर्णहृदयाः
स्मरंतः संसारे विगुण परिणामावधि
गतीः ॥वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्र-
किरणैस्त्रियामांनेष्यामो हरचरणचित्तै-
कशरणाः ॥ ४६ ॥

पुनः शंकरछंद ।

कबदेहुँमै अरथीन सर्वस जोर कर कर दोय ॥
कब तरुण करुणा साथ अंतःकरण पूरण होय ॥
दुर्कामको परिणाम योनी तिरयगादि अपार ॥
तिहँदुःखसीमा पिखडरों निज मंद कर्म निहार ॥
जिस पुण्य वनमहिंशरद हिमकर किरणपरिणितचारु॥

वनतासमै करवासमै निर्वेदसहित विचार ॥
मम चित्तको हर चरणकी तर शरण होय सराग॥
जब इमवितावों विमलरैना तबी मैं बड़भाग॥

दोहा ।

तज स्वतंत्रभव भोग कब, लखोंनिजातम आप ।
देहविषे संदेह बिन, विचरों तब निहपाप ॥ १४ ॥

श्लोकः ।

क्षांतं नक्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं नसं-
तोषतः सोढा दुःसहशीतवात तपनाः
क्लेशान्नतप्तंतपः॥ध्यातं वित्तमहर्निशंनिय
मितप्राणैर्नशंभोः पदं तत्तत्कर्मकृतं
यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वंचितः ॥२७॥

पुनः दोहा ।

मुनों कर्म जो जो करे, सोसो हमहूं कीन।
तिनकर्मोंके फलों कर, हमठागे मतिहीन ॥१५ ॥
मुनिन लह्यो सुखरूप फल, मोहिं दुःख फल लीन।
करे कर्म समविषम फल, इउँमैंठाग्योदीन ॥१६॥

तजेगृहोंचित सुख मुनिन, करसंतोष विवेक ।
अहंविदेश कलेश कर, त्यागे भोग अनेक ॥१७॥
ऋषिन क्षमाकर खलोंके, सोढे दुर्वचनादि ।
मैंभीसहे कुवाकपर, कर याचनसेवादि ॥ १८ ॥
शीत वात आतप दुसह, पुना कलेश अपार ।
मुनिन सहे तपधारकर, हमों सहे सह नारि॥१९॥
हर पद पद्म युगलमुनो, ध्यायो मनकृत वाच ।
प्राणो कर दिन राति मैं,ध्यायो धनको साच॥२०॥
क्षमातृप्ति युत दुर्वचन, सहों तजों गृहभोग ।
सरुचि ध्याँउँहरपाँउमैं, तब तासम फलहोग॥२१॥
ऐसेशंकर[1] वंत दिन, हेहर शंकर शंभु ।
होंहिं कबी सम मुनिनके, मैंविचरों तज दंभ॥२२॥

अथवा—दोहा ।

स्वरग अखय सुख लाभ हित, करे मखादि सराग।
करे याग ऋषिवाक गहि,पुना मुनिन मम ठाग२३॥
ताँ क्रतुके[2] फलको जबे, परामर्श[3] मैं कीन ।

---

१ कल्याणकरने वाले । २ यज्ञ । ३ विचार ।

जनत पीनभय ममहृदय होय पुण्यजब क्षीन २४॥
गिरतनाक गिरिते अधे, पुरुष पषाण तुरंत ।
सहित कष्टतेकष्ट तर, अनुभव करत सुजंतु ॥२५॥
जन्म मरणदृढ करणको, अतिदृढकरण सुभोग ।
ताहित मैं क्रतु करे भव, को मोसम खल होग २६॥
भोगबडाई कर मुनो, मोहिलुभायोचित्त ।
कर्मगर्त्त महिं डार मम, हर्‍यो मुक्ति सुखवित्त २७॥

सोरठा ।

करसंतोष विवेक, तजे न गृहके उचित सुख ॥
त्यागे भोग अनेक, भ्रमण विदेश कलेश कर॥२८॥

दोहा ।

अहो क्षमा कर खलोंके, सहे न दुर्वचनादि ।
सोढे मोहिं कुवाक पर, कर याचन सेवादि ॥२९॥
शीत वात आतप दुसह, पुनः कलेश कदंब ।
मै न सहे तप धारकर, सोढे वीच कुटुंब ॥ ३० ॥
ध्यायो धनको अहर्निशि, मन कृत वचन सनेम ।
ईश्वरके पदपद्म को, ध्यायों त्यों न सप्रेम ॥३१॥

ए गुरु पश्चात्ताप उर, भयो न आतम वित्त ।
विन विचार मैं मुग्ध को, लियो विरुयों भव जित्त ॥
दुष्ट[१] अदृष्ट सनेह युत, उरकागर पर वरण ।
भोग राग मय सोनलय,अंकविचार अवरण॥३३॥

सोरठा ।

प्रभु अनाथके नाथ, मैं अनाथके माथ पर ।
कृपादृष्टिके साथ, शिवानाथ निज हाथ धर ॥३४॥
विन वैराग्य विवेकमैं, तवपदपंकज टेक ।
श्रीशंकर मम शंकरो, देवैराग्य विवेक ॥ ३५ ॥

श्लोकः ।

धन्यानां गिरिकंदरे निवसतां ज्योतिः परंध्या यता मानन्दाश्रु कणान् पिबंति शकुना निःशंक मंकेशयाः ॥ अस्माकं तुमनोरथो परचितप्रासाद वापी तट

---

१ दुष्ट अदृष्ट रूप स्नेह अर्थात तैलसे चिकना हुआ तथा भोग रूपी रंगसे रंगित हुआ (उर) चित्तात्मक कागज विचार रूप निर्मल अंकों अर्थात् अक्षरोंको ग्रहण नहीं कर सकता.

क्रीडा काननकेलिकौतुक जुषा मायुःपरं-
क्षीयते ॥ ४८ ॥

पुनः चौपाई ।

भवमेवहीपुरुषबड़भागी।इतउतभोगचाहिंजिहँत्यागी॥
करनिवासगिरिकंदरमाँहीं ।परमप्रकाशरूपहरध्याहीं॥
तिसेध्यानकेआनँदकरके ।तिनहिंदृगनतेउदकजुसरके॥
बैसनिशंकअंककेमाँही।अचवहिंविहँगसरितजलताँही॥
धन्यजनों की उमरा ऐसे। परीहोत क्षय भाखीजैसे ॥
हम मतिमंदअधन्यकुभागी ।भुक्तमुक्तिबिबतेवैरागी ॥
केवल व्यर्थमनोरथसंगा।ममशुभअवधभवतपरिभंगा॥
बापी बागतडागकिनारे ।सुंदरमंदिरहोंहिहमारे॥३९॥
शुभगभामिनीसहतिहँअंतर।करहिंसुक्रीडाकेलिनिरंतर॥
असमनराजकौतुकहिंध्यावत।असीआयुषापरेबितावत॥
किंचित संचितभोगमझारी।परीहोतक्षयवयसहमारी॥
तिनोसमानसुदिवसहमारे।कबआवहिंगेहेसमरारे ४१॥

दोहा ।

निज भव[1] हित भवत्याग हित, भोभव मैं तव ध्याउँ।

---

१ हेमहादेव। २ अपने कल्याण के लिये ।

शेष आयु निजकब वयं, सुखसों तथा विहाउँ॥४२॥
भरत शतक वैराग्यको ऽध्याय चतुर्थो बस्स ।
करीशुभेच्छा भरत नृप,ताविन जीवन भस्स ४॥

दोहा ।

अबपंचम अध्यायमें, सात श्लोक अनूप ।
विधि को देत उलाहनें, बहुविधि भरथरि भूप ॥ १॥

श्लोकः ।

प्रियसखि विपद्दंडव्रात प्रपात परंपरा परिचय चलेचिंता चक्रे निधाय विधिः खलः॥मृदमिव बलात्पिंडीकृत्य प्रगल्भ कुलालवत् भ्रमयति मनो नोजानीमः किमत्र विधास्यति ॥ ४८ ॥

कवित्त ।

मोमन को अज खल मृदपिंड सम खलु,
करके इकत्र चिंताचक्र परधरेहै ।
दुःखमाँझ दुःखहोर लाभसाँझभोर दंड,
जोरकर जोरकर फेरे चल करेहै ॥

अत्र मित्र वल्लभ प्रगल्भ कुलालवत,
कौनेविधि करे विधि वैतो घरे घरे है।
अहो मैन जानो भोरा दैवमोते मुखमोरा,
चिंता चिता विषे मोरा चित्तनित्य जरेहै ॥ २ ॥

श्लोकः।

अभिमतमहामान ग्रंथिप्रभेदपटीयसी गुरु तर गुणग्रामांभोज स्फुटोज्ज्वलचंद्रिका ॥ विपुलविलसल्लज्जावल्लीवितान कुठारिका जठरपिठरीदुः पूरेयं करोतिविडंबनम् ॥ ४९ ॥

पुनः कवित्त।

कुलको जो मान सो महान दृढ़ग्रंथि आहि,
ताहिके प्रभेदनके माँहिं स्यानी भारीहै।
गुण गुण कवी वारी कोखिरानवारी शुभ्र
सोम उजियारी लाज लताको कु हारीहै ॥
मोक्षभोगसुखआरी दीनता कलेशक्यारी,
धीरजकेदीपको समान व्यारीहारीहै।
ऐसी पेटकी पिटारी लाई क्रूर मुखचारी,

पूर पूर सबहारी ठागी विश्व सारीहै ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

हिंसाशून्यम यत्नलभ्यमशनं धात्राम-
रुत्कल्पितं व्यालानां पशव स्तृणांकुर
भुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ॥ संसारार्ण-
वलंघनं क्षमधियां वृत्तिःकृता सा नृणां
यामन्वेषयतां प्रयांति सततं सर्वे
समाप्तिं गुणाः ॥ ५० ॥

कवित्त ।

नागोंको अहार व्यार माटी कीनो मुखचार,
उद्यमनहिंसा वार सुखलाभ होयहै ।
अंकुर तृणादि स्वादु सुधासों प्रसाद पाय,
पशुवृंद अहलाद धार धरा सोयहै ॥
रचीनरोंकी कुवृत्ति सिद्धजो नविनावित्त,
धनसिद्धता अमित्त गुणनित्य खोयहै ।
जनोंसोंविरोध विधि करकहाकीनो सिद्ध,
रंडीपूत समताहिं दंडीनाहिं कोयहै ॥ ४ ॥

सोरठा ।

भव निधि तरण मँझार, बली नरन की तरुण धी ।
विधिना ताँहिं अहार, कतउलटी विधिनाकियो ॥

श्लोकः ।

आधिव्याधिशतैर्वयस्यतितरामारोग्य-
मुन्मूल्यते लक्ष्मीर्यत्र पतत्रिवच्चविवृत
द्वारा इव व्यापदः ॥ जातं जात मवश्य-
माशुविवशंमृत्युःकरोत्यात्मसात्तत्किं-
न्नाम निरंकुशेन विधिना यन्निर्मितं
सुस्थितम् ॥ ५१ ॥

पुनः कवित्त ।

आधिव्याधि वृंदरोग ताँहींकेसंयोगकर,
आयुमैंअरोगको वियोग भयोअतिहै ।
पुनारमा जहाँ वसे तातें खग वत नसे,
खुलेद्वारे वत धसे विपता महतहै ॥
जोजोनिरमयो भयो पर वशिताहिं काल,
ततकाल निजवशि अवश करतहै ।

अजंजो अकुंडे कीनों काँकी शुभ थिति चीनों,
वेदलोकमतसों न सुखी नको सतहै ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

क्वचिद्वीणानादः क्वचिदपि च हाहेति रुदितं क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्त कलहः ॥ क्वचिद्रम्यारामा क्वचिदपि जराजर्जरतनु र्नजाने संसारः किममृत मयः किं विषमयः ॥ ५२ ॥

पुनः कवित्त ।

बाँसुरी की ध्वना कहूँ हाहा इति रोना कहूँ,
श्रेष्ठन की गोष्ठी कहूँ दुष्टता हरतिहै ।
कहूँ अंध धी सुराची महाकटुवाचीकहूं,
रामाअभिरामा रमा मनहरे अतिहै ॥

---

१ निरंकुश ब्रह्माने जो जो कुछ बनायाहै उनमें हम कौन वस्तुकी शुभ स्थिति देखें हमारे को तो वेदशास्त्रसे तथा स्वानुभवसे यही प्रतीत होताहै कि न कोई सुखी जीव है और न कोई ब्रह्माका बनाया पदार्थ सत्यही है ।

कहूँदुष्ट कुष्ट संग गरे अंग कष्टसहें,
सदा जलपत रहें जैसे जलंपति है ।
रचना निरंकुश विरंचिकी न जाने हम,
सुधारूपहै कि विषरूप ए जगत है ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

ये संतोषसुखप्रमोदमुदितास्तेषां न भिन्ना मुदो ये त्वन्ये धनलुब्धसंकुलधियस्तेषां न तृष्णा हता ॥ इत्थं कस्य कृते कृतं च विधिना तादृक्पदं संपदां स्वात्मन्येव समस्तहेममहिमा मेरुर्नमे रोचते ॥ ५३ ॥

पुनः कवित्त ।

रुचित सुमेरु मोन आवैकाहूँ काम जोन,
निजगौरतामै सोनासदागलतानहै ।
जीव जेसंतोष कर त्रिपत सदीव तर,

१ अर्थात् समुद्र की तरह गुड़गड़ाते रहतेहैं ।

२०:१२६६) 14.6.61.

ताँकोशेष नआनंद रह्यो कछुआनहै ॥
पुना जेई आन जन धन लोभकर मन,
व्याकुल हैं जाँके ताँकी तृषना न हानहै ।
कौनके निमित्त ऐसी संपदा अमित्त रची,
इतिविधि करके न विधि बुद्धिमान है ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्न
मलंकरणं भुवः॥तदनु तत्क्षणभंगि करो-
ति चेदहह कष्टमपंडितता विधेः ॥५४॥

पुनःकवित्त ।

पुरुष रतन गुण गणको सदन पुन,
पौरुषको आयतन परमप्रवीना है ।
सारी धरा को शृंगार जडाजडकोशिदार,
मोक्ष भोग को भँडार चारु लख लीनाहै ॥
चतुरवदन को चतुरहमचीनो तब,
प्रथमजोऐसे नरकोतपत कीनाहै ।
ताँके पाछे ततक्षण नष्टकरे हाहाकष्ट,
इतविधि विधिना को पंडित न चीनाहै ॥ ९ ॥

दोहा ।

भरतशतकवैरागको,ऽध्यायपंचमोअंत ।
दोषअरोपविरंचिको, हरिदयालुवरणंत ॥ ९ ॥

दोहा ।

षष्ठे श्रेष्ठ जननकी, वरणनकरैं प्रशंस ।
शुभश्लोक सत्राँतिसे, हृदय कमल को हंस ॥ १ ॥

श्लोकः ।

रम्यं हर्म्यतलं नकिं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं किंवा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये ॥ किंतूद्भ्रांतपतत्पतंगपवनव्यालोलदीपांकुरच्छायाचंचलमाकलय्य सकलं संतो वनांतं गताः॥५५॥

छप्पय ।

गयेसंत वन माँहिं नाँहिंको जंतु जाँहिं महिं ।
वसन हेतु क्याधाम तलोअभिरामहुतो नहिं ॥
श्रवणयोग्यगीतादि कहाँथो ताँ वियोग दुख ।
कै न अधिक रुचि हेतु प्राणसम मित्र संग सुख ॥

ते हुतेसर्वपर तिहँ तजे दीपसिखा वत तरल पिख ।
यत भ्रमतो पतत पतंग के पंखपवन कर चपल झिख २॥

श्लोकः ।

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विनः ॥ शफरी स्फुरितेनाब्धेः क्षुब्धता जातु जायते ॥ ५६ ॥

पुनःवही सवैया ।

यहि मंडलमात्रप्रपंच सबी ततवेतनको कतकारणछोभा।
जिम सागरमेंमछरीमछरीउछरेमछरीकछुहोतसुलोभा॥
तिंमनेकलुभायसकेनतिंसक्षणक्षीणलखीतिनलोककीशोभा।
शुक्तीज्ञभ्रमातनरूपोमृषाततवेतनकोनतथातिंहँक्षोभा ॥ ३ ॥

१ सूर्य्य या चंद्रको रोधक परिवार । २ जैसे मछलीके चित्तमें दूसरी छोटी मछली पकड़नेका लोभ होता है तो वह उछलती है परन्तु सागरको क्षुब्ध नहीं करसकती । ३ वैसेही मछलिओंकी तरह परस्पर एक दूसरेको विघातक संसारके पदार्थ तत्त्ववेत्ता रूप समुद्रको नेकभी (लुभाय) क्षुब्ध नहीं करसकते क्योंकि (क्षणक्षीण लखी) इत्यादि ।
४ जैसे शुक्तिके सच्चे ज्ञानवाले पुरुषको उसमें मिथ्या रूप्य की प्रतीतिः भ्रमावती नहीं वैसेही स्वाधिष्ठानमें मिथ्या प्रतीयमान संसारभी तत्त्ववेत्ताको क्षोभकारक नहीं है ।

श्लोकः ।

सखे धन्याः केचित्त्रुटितभवबंधव्यति-
करा वनांते चित्तान्तर्विषमविषयाशीवि-
षगताः ॥ शरच्चंद्रज्योत्स्ना धवलगगना-
भोगसुभगां नयंते ये रात्रिं सुकृतचयचि-
त्तैकशरणाः ॥ ५७ ॥

पुनः सवैया ।

नित्य पुण्य परायण जाँचित केवल ताँभय बंधहन्योगनहै।
मन पंनग क्रूर मँझार अहं विष मूल सने ज्ञुतिनेहनहै॥
वरशारद चंद्रकी चाँदनीसों यहि व्योम तलो उजलो वनहै।
वस जो वनमै असरैन वितावत जोवनमै जनसो धनहै४॥

श्लोकः ।

महीरम्या शय्या विपुलमुपधानं भुज-
लता वितानं चाकाशंव्यजन मनूकूलोऽ
यमनिलः ॥ स्फुरद्दीपश्चंद्रो विरतिव-
नितासंगमुदितः सुखं शांतः शेते मुनि-
रतनुभूतिर्नृप इव ॥ ५८ ॥

पुनःसवैया ।

शुचि चारु घनी क्षिति सेजबनीमृदुद्वैभुजवेल विशालसिरानो।
सियरोगतिमंदसुगंधवहेयहिवातअहैव्यजनोखवितानो॥
विधुदीपलसेतपतादिग्रसेशुद्धबुद्धिबधूमिलमोदमहानो।
मुनिशांतस्वरूपअनूपविभूतिसोंभूपतिकेसमसोवतमानो५

श्लोकः ।

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किंतापसः किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ॥ इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः संभाष्यमाणाजनैर्नक्रुद्धाः पथिनैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥ ५९ ॥

पुनःकवित्त ।

कहाँ एचंडाल जात मगमो द्विजाति किधों,
कैधोंकोऊ शूद्रहै कि चोर वा तपेशहै ।

---

१ आकाशका चंदोआ ।

तत्त्वके प्रवेशमें प्रवीन मति मान उत,
उत्तम योगेश को न चीनें कौन वेषहै ॥
इतिविधि करजो संभाषमाण जननके,
मुखोंकर संभव विकल्प अशेषहै ।
सुनें गुनें मुनि ताँहि वरशापदेतनाँहिं,
जाँहि सुखी पंथ माँहिं जैसे नक्षत्रेश[1]है ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं काले शक्त्याप्रदानं युवति जनकथामूकभावः परेषाम्॥ तृष्णास्रोतो विभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसा मेषपंथा ॥ ६० ॥

पुनः कवित्त ।

हिंसा नाहिं करे परद्रव्यको न हरे सत्य,
वचन उचारे पुण्य समे पुण्य करहै ।

---

१ नक्षत्रेश अर्थात् चन्द्रकीतरह अथवा क्षत्रेश सर्व क्षत्रिय राजाओंके महाराजभी जैसे सुख पूर्वक नहीं चलसकते ।

यथावित्त कथा परनारों की न भनें सुनें,
ताँते गुंगबोला बने भोला सम चरहै ॥
तृष्णाको प्रवाह भंग गुरोंविषे नम्र अंग,
मित्रभाव सभसंग करे हर हरहै ।
गायो सब ग्रंथनमें संत ऐसे पंथन में,
राग द्वेष मोखचरे जैसे दिनंकरहै ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

पाणिःपात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्ष्य-
मक्षय्यमन्नं विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशक-
मपमलं तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥ येषां निः
संगतांगीकरणपरिणतिः स्वात्मसंतो-
षिणस्ते धन्याःसंन्यस्तदैन्यव्यतिकर
निकराः कर्म निर्मूलयंति ॥ ६१ ॥

पुनःकवित्त ।

पाणिपात्रपैपवित्र भिक्ष्याअन्न अक्षैचित्र,
द्वारे द्वारे भ्रमे मिले गिले निरदोषहै ।

---

१ अर्थात् जैसे सूर्य्यका गमनागमन किसीके राग द्वेष पूर्वक नहींहै साधु पुरुषको भी वैसेही होना चाहिये ।

दशो दिशा चैल विसतीरण अमैल पुन,
तलप अनंता[1] की अनंत सुख घोषहै ॥
करमांको मूलमूलाविद्या[2] निरमूल जाकी,
दीनता निवारी सारी स्वातम संतोषहै ।
भेदाभेद भ्रम भागो ब्रह्मवित वीतरागो,
मानअपमान ते न उदे मोद रोषहै ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

कौपीनं शतखंडजर्जरतरं कंथा पुन स्तादृशी निश्चिंतं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं शय्याश्मशाने वने ॥ मित्रामित्रसमानतातिविमलाचिन्ताथ शून्यालये ध्वस्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥ ६२ ॥

पुनः गीया मालतीछंद ।

शत खंड क्षीण कुपीन जाँकी तास समजिहँ गोदरी ॥

---

१ अनन्ता अर्थात् भूमिकी शय्या यावत सुखोंका घरहै । २ संसार मात्रको आदि कारणका नाम मूलाविद्या है ।

सुखसाध्य भिक्षाहार शय्या वन मशाने गिरिदंरी ।
पिखशत्रुमित्र समान सुख द्युति शून्यसदनो मैसदा ॥
निर्मल निजातम को भजें सुस्वरूपते जनसर्वदा ॥ ९ ॥

दोहा ।

चरहिं स्वतंत्र निरंकुशे, सप्रमाद मदनष्ट ॥
अधिष्ठानसुप्रबोधकर, कलिपत नष्टसमष्ट ॥ १० ॥

श्लोकः ।

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृक् नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रव र्त्मांगतो वा ॥ योऽयं धत्ते विषयकरिणी गाढरूढाभिमानः क्षीबस्यांतः करणक-रिणः संयमालानलीलाम् ॥ ६३ ॥

पुनः ललित छंद ।

तीन भवन मय सर्वसरग को आश्रमंत मैं ढूँढ्यो ताता ॥
कहूँ नदेखासुना कहूँ नहिं ऐसो जन जो जन्यो विधाता॥
जनको अंतःकरणकरीसम विषयरूपकरिणी मिल राता।
संयम संगल तिहँ पग मै जिहँ डार्यों लीला करभो भ्राता।

१ पर्वतकी कंदरा ।

दोहा।

सुषुपति वत जाग्रत विषे, तजे त्रिधा[1] जिहँभोग।
ऐसो इंद्रिय जीत जन, को इक सुस्थित होग॥१२॥

श्लोकः।

शय्याशैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः सारंगाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः॥ येषां नैर्झरमंबुपानमुचितं रत्येवविद्यांगना मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धोन सेवांजलिः॥ ६४॥

नील छंद।

शैलशिला सिहजा गिरिकंदर मंदिरहैं॥
वृक्षनके छिलके पट वा दिग अंबरहैं।
मित्र कुरंगसमूह सही तिन संगचरे॥

---

१ कायेन वाचा मनसा अथवा सात्विक राजस तामस, किम्वा अनिच्छ परेच्छ स्वेच्छ इत्यादि।

कोमल पुण्यं[1] फलीन फलोंकर प्राणधरे ॥ १३ ॥
शीतल स्वेच्छित स्वच्छ सुगंधित मिष्ट घना ॥
उच्चित अंबु गिरिंदनको अचते जु जना ।
ब्रह्मविचारवती सुमती युवती कु सदा ॥
धार रिदे महिं मोदलहैं न तजें सुकदा ॥ १४ ॥
जोनिज प्राणन त्राण कि कारण पाँणि[2] बिबे ॥
जोर नमों शिरसों न करें कहुँ अग्रकबे ।
जो इतिरीति पुमान विराजत लोक विखे ॥
मानततां परमेश्वरमै सुनजीव सखे ॥ १५ ॥

श्लोकः ।

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्य्यंङ्क
शयनं क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च
शाल्योदनरुचिः॥क्वचित्कंथाधारी क्वचि-
दपि च दिव्यांबर धरो मनस्वी कार्यार्थी
न गणयति दुःखं नच सुखम् ॥ ६५ ॥

---

१ कोमल तथा पुण्यरूप पवित्र हैं फल जिनके ऐसे वृक्षोंके फलों कर । २ अपने दोनों हाथोंको ।

पुनः कवित्त ।

कबी भूमि आसन सिंहासन पै बास कबी
कबी भिस ग्रास कबी व्यंजन अहारहै ।
कबी शतखंडवती गोदरी को ओढे जती,
कंबर को कबहूँ दिगंबर को धारहै ॥
कबीभानु कर तपे कबीशीशछत्र दिपे,
कहूँ सतकार होत कहूँ त्रिसकारहै ।
तदपि न संत जन सुखी दुखी होत मन,
आतमा असंग लखे देहको विहार है ॥ १६ ॥

दोहा ।

क्रिया स्वप्न प्रतिबिंबते, बिंब प्रबुद्ध अरंग ।
तथा तृधा कृत काल त्रय, जीवन मुक्त असंग॥१७॥

श्लोकः ।

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितः स्वायत्त-

अर्थात् जैसे स्वप्न गत लोभ भय आदि क्रिया प्रबुद्ध पुरुष की हानिकारक नहींहै तथा जैसे प्रतिबिम्ब गत अनेक प्रकार के वर्ण-बिम्बमें स्पर्श नहीं करसकते एवं त्रिधाकृत अर्थात् शुक्ल कृष्ण अशुक्ला कृष्ण भेदसे तीन प्रकारके कर्म अथवा भूत भविष्यत वर्तमान क्रिया किम्वा कायिक वाचिक मानसिक क्रियासे जीवन्मुक्त पुरुष तीनों कालमें असंग है ।

चेष्टः सदा दानादान विरक्तमार्गनिरतःकश्चित्तपस्वी स्थितः ॥रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनैः संप्राप्तकन्थासखो निर्मानोनिरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः ॥ ६६ ॥

पुनः कवित्त।

जाँच जाँच अन्न खातो आन देन लेन घातो,
नीचजन संग हातो स्वते आतो जातो है ।
विचरे अलग मग माँहिं नाहिं जग माँहिं,
काहूसों विरोध नातो बोधसिंधु नातो है ॥
गली गली माँहिं बीन गली गली टली लीन,
ताँको कंथा सीता पीन खीन सीता वातोहै ।
अहंकृति वृत्ति रातो नाँहिं निरमान गातो,
जाँको मनमीन ब्रह्मानंद सिंधु मातो है ॥ १८ ॥

दोहा ।

चितसों मिल चित सो भयो,जिहँचित तजनिजबान ।
असजीवन मुकते पुरुष, नाहिं मुक्ते जगजान ॥ १९ ॥

श्लोकः ।

आशानामनदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥ मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी तस्याःपारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥६७॥

पुनःकवित्त ।

आशा नाम सरी मनो राज नीर भरी करी,
तृषणा तरंगो खरी व्याकुली गँभीरहै ।
धीरज को तरु हारी बुद्धि नावको निवारी,
भव सिंधु[1] गति वारी विपता समीरहै[2] ॥
मदनादि खग[3]भीर रागद्वेष ग्राह गीर,

१ इस आशारूप नदीकी संसाररूप समुद्र में गतिहै ।

२ विपत्ति रूपी समीर वायु बुद्धिरूपी नौकाको चलने नहीं देता ।

३ कामादि पक्षीगणकी इसके किनारे भीड़ हैं तथा रागद्वेषादि अनेक (ग्राह)नक्र इसमें जीवोंको पकडनेवाले हैं तथा मोहरूप (चक्र) घुमन घेरोंवाला इसका जलहै ऐसा (बांका) टेढ़ा ठंढा है कि मानो स्पर्श करने मात्रसे जलाता मतीत होता है ।

मोहचक्र याँको नीर जारे वाको सीर है।
ऊँचे चिंता तटी जाँते तरनी कठिन ताँते,
भोगी ताँमैं वहे योगी वहें पार तीर है ॥ २० ॥

सोरठा ।

सुख स्वरूप ते साधु, निकऌ गए तिहँ सरतमो ।
आशा नदी अगाध, निकल लए जन इतर गण ॥ २१॥

श्लोकः ।

नभिक्षा दुःप्रापा पथि पथि मठारामस-
रितः फलैः संपूर्णा भूर्विटपि मृगचर्मापि
वसनम्॥सुखे वा दुःखे वा सदृशपरिपाकः
खलु तदा त्रिनेत्रं कस्त्यक्त्वा धनलवम
दांधं प्रणमति ॥ ६८ ॥

पुनः नराजछंद ।

पथे पथे न भीख कष्ट साथ हाथपै परे ।
मठे मसान बाग कि युगांत आग सों जरे ॥
समूह भूमिपै फली फलें कहाँ नदें फलें ।
मृगानके मृगान किं नशीत वात कोदलें ॥ २२ ॥

इसो समाज आजलौ विराजमान है सबी।
इनेहुते त्रिनेत्र को महानधी तजे कबी॥
पुनाकबे भजे धनं कणी मदांध जंतुको।
वसे इने बने भजे निजातमा अनंतको॥ २३॥
समान पाप पुण्यके विपाक दुःख सुखको।
लखे चरे बने नरागद्वेष यों विदुःख को॥
इसे पुमान लोकमैं अशोक कोइके कहूँ।
विलोकहैं अनेक को जुब्रह्म रूप एकहूं॥ २४॥

श्लोकः।

महादेवोदेवः सरिदपिच सैवामरसरित्
गुहा एवागारं वसनमपि ताएव हरितः॥
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रत-
मिदं कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु
दयिता॥ ६९॥

पुनः कवित्त।

देव एक महादेव नदीदेव नदीसेव,
गिरि गुहा धाम एवचीरदिशा चारहैं।

एह काल मित्र नीको व्रतनिरदीनताको,
संग बुद्धि युवती को प्रिया बटडारहैं ॥
सुतानिरवैरता कुमार ब्रह्मको विचार,
और कहा भनों याको बन्यो या अचारहै ।
ऐसे सदाचार परवार करजोऊ नर,
सदापरवायों सदा ताँहिंको जुहारहै ॥ २९ ॥

श्लोकः ।

भिक्षाहारमदैन्यमप्रतिहतं भीतिच्छिदं सर्वदा दुर्मात्सर्यमदाभिमान मथनं दुःखौघविध्वंसनम् ॥ सर्वत्रान्वहमप्रयत्नसुलभं साधुप्रियं पावनं शंभोः सत्रमवार्यमक्षयनिधिं शंसंति योगीश्वराः ॥ ७० ॥

पुनःकवित्त ।

भिक्षाहर्योंअन्न गुणगणोंके संपंन,
अक्षैनिधि अयतन लाभदीनता अभावहै ।
दुर मतसर त्रास मद अभिमान आश,

हने दुःख राशि सने जने शांति भावहै ॥
नाँहिं प्रति हत है सकल काल सतहै,
अखिल देश गतहै महेश यश गावहै ।
हिंसा बाध निरोपाध भनत प्रशंसा साधु,
मुख्यमोक्ष साधन मों साधन को भावहै ॥ २६ ॥

दोहा ।

शम दमादिके पुष्टिहित, गर्वहतार्थ सप्रीत ।
गहेसिद्ध परमार्थहित, भिक्षा अन्न अतीत ॥ २७॥

श्लोकः ।

पाणिपात्रयतां निसर्गशुचिना भैक्ष्येण संतुष्यतां यत्रक्वापिनिषीदतां बहुतृणं विश्वं मुहुः पश्यताम्॥अत्यागेपि तनोरखंडपरमानंदावबोधस्पृहां मर्त्यः कोपि शिवप्रसादसुलभां संपत्स्यते योगिनाम् ॥ ७१ ॥

पुनःकवित्त ।

परेपाणिपात्रपै स्वभावक पवित्रभिक्षा,

ताँसों प्राण रक्ष्याकरे जहाँचहे वहेहै ।
वार वार विश्वको निहारतृणभार वत,
करेत्रिसकार सदा चारमाहिं रहे है ॥
तनुके अत्याग लग शुभमग लगरहे,
दहेजीवभावको स्वभाव ब्रह्म गहेहै ।
ऐसीदैवी संपदा न लहेदैवदया विन,
ईशकृपाते अनीश[1] निज रूप लहेहै ॥ २८ ॥

श्लोकः ।

स्थितिः पुण्यारण्ये सहपरिचयो हंत हरिणैः फलैर्मेध्या वृत्तिः प्रतिनदि च तल्पानि दृषदः ॥ इतीयं सामग्री भवति हरभक्तिं स्पृहयतां वनं वा गेहं वा सदृशमुपशांतैकमनसाम् ॥ ७२ ॥

पुनःकवित्त ।

शुचिवनोंकेनिवासी मृगोंसंगहासीखेल,
मेलदासदासीको न मेध फल आशीहैं ।

---

१ यह अल्पज्ञ जीव ।

कदीप्रति नदी तट कबी शमशाने मठ,
कबहूँ पखान बट तरुतरे बासीहैं ॥
केवल प्रसन्न मन तुल्यआयतन वन,
तदपि एकांत घन वासी सुख राशीहैं ।
ईशके उपासी की प्रकाशी या विभूति ताँहिं,
गावें सुनें ध्यावें नाँहिं पावें यमपाशीहैं ॥ २९ ॥

दोहा ।

भरत शतकवैरागको, इतिषष्ठो अध्याय ।
सुजनोंके गुण गण भने, हरीद्याल शिर नाय ॥ ६ ॥

दोहा ।

सतेंतीन भूपानसों, भयो पृथक संवाद ।
तिनें श्लोक भने तिनें, हनें मोह गर्वाद ॥ १ ॥

सोरठा ।

विनरुचि कहूँ नरेंद्र, दीन भरत प्रति भोग कछु ।
तत अलीन नाथेंद्र, तीन हेतु कर चीन अप ॥ २ ॥
राज अंश समरक्त, भोग योग न विरक्तको ।
दान रक्त विनभक्ति, तव मम सम पद हेतु त्रय॥३॥

श्लोकः ।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभि-

मानोन्नताः ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षुप्रतन्वंति नः ॥ इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरंतरं यद्यस्मा- सुपराङ्मुखोसि वयमप्येकांततो नि- स्पृहाः ॥ ७३ ॥

दोहा ।

त्वंराजा राजा अहं, अधिकभेद कछु नाहिं ।
तुमुँ चतुर्विध चमू कर, करोगर्व मनमाहिं ॥ ४ ॥
मन बुधि चित्त अहं चतुर, सेना प्रबल प्रवीन ।
लब्ध गुरों की सेवकर, हमउन्नत इतपीन ॥ ५ ॥
बहुप्रकारके धनों कर, तुम प्रसिद्ध जगमाहिं ।
हमनिज निर्मल गुणोंकर,प्रगट दशोदिशि आहिं६॥
बीच पुस्तकों कविजनों, गाये हमरे गीत ।
भो भूपति संसारमें, मैं प्रसिद्ध इति रीत ॥ ७ ॥
भूके कोटि विभाग कर, कण लवांश तिहँ पाय ।
तांकर त्वं उन्नत भयो, रुचि विहीन दर्शाय ॥८॥
बोधनिजातम राजकर, हमगर्वत उर मांहिं ।

नाहिं करें हमचाहि तव, हेमानद नर नाह ॥९॥
ईश्वर अंश अतिथी लख, मानहान अघहोग ।
हमकर तुम इत तृतयाविध, मान दान के योग ॥

सोरठा ।

याचकादिकर भूप, मानदानके योग्य तुम ।
त्योंहमते तव ऊप, होत न समता भावते ॥ ११ ॥

दोहा ।

किंचित तव मम सामता, बाह्यगुणों कर चीन ।
राजाँतर मों अंतरो, हम अदीन तुम दीन ॥१२॥
यथालाभ संतुष्ट हम, निजानंद मों लीन ।
इतउतके सुखसों अहित याविधि अहं अदीन॥१३॥

सोरठा ।

मदन मदादि क्लेश, शोक लोक परलोकके ।
ताँकर दुखी हमेश, त्वं नरेश हैं दीन इम ॥ १४॥
जगजीवनादिनचार, तज मदस्वेच्छित संचरो
सभजनहरि अवतार,करो मित्रता सर्व सह ॥१५॥

दोहा ।

गहेपादयोगीशके, नमो दंड इव कीन ।
आइस पाय स्वदेश नृप,गयो मुदित मदहीन॥१६॥

वचन नाथके धारउर, डार गर्व संताप ।
भूप अभय विचरत भयो,वृथा न साधु मिलाप१७॥
अमृत वचन की वृष्टिकर, कृपादृष्टि के साथ ।
गर्व ताप नर नाथको, हऱ्यो नाथके नाथ ॥ १८॥

पुनः दोहा ।

श्रीहरिभरतयतींद्रप्रति, अमुक नरेंद्रोवाच ।
चिंतामणि समराज तज,कत दरिद्र मोंराच॥१९॥
सम मुदिता निर्दीनता, निर्भय सहित विचार ।
कीर्तीकरतदरिद्रकी, ताप्रति भरत उदार ॥२० ॥

श्लोकः ।

वयमिहपरितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सममिह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ॥
स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को
दरिद्रः ॥ ७४ ॥

चौपाई ।

वल्कलकरहुलासहैहमको।बहुलक्ष्मीकरमोदसुतुमको॥
मैं प्रसन्न सक्तू शागादहिं ।त्वंप्रसीदबहुबिजनस्वादहिं॥

वयंहर्षक्षितिशिलाशयनकर।यूयं तुष्टदुरदरदख[illegible]ध्वं,
शांति त्रिया युतममसंतोषा।सुंदरनारिनकर[illegible]
नृपतितृप्तितायोजनग्रामहिं।किंचिततारतम्यनहिं[illegible]
पुनःदरिद्रीभवतुवहीनर।हृदयजाससुप्रकाशअ[illegible]वै॥ ४
भूपति चित्त प्रतुष्टे जबहीं। को धनवंत रंक को त[illegible]॥
मो मनअबसंतुष्टभयोअति।नाहींदरिद्रीधनीनिहारत॥
भेदभाव सगरोअबनाश्यो।एकब्रह्मउरमाहिंप्रकाश्यो॥
परमानंदब्रह्ममैंजोरा।परमानंदभयोमनमोरा॥ २८॥
ब्रह्माकार भयो मन जाते। ब्रह्माकार लखे भव ताँते॥
तुम जुकह्योनृपमोहिंदरिद्री।कवनयुक्तिइनमैंतुमअद्री॥
देख दिगंबरकाय विवर्णा। मोहिं दरिद्री तोहिं जु वर्णा॥
देकरतोतेअधिकसमाजा। लियोदरिद्रमोलमेंराजा॥
जासप्रतापनिजातमशोधा।भयेनिरस्तसमस्तविरोधा॥
जास मया कर हेनर राई। मैंअब सिद्ध अवस्था पाई॥
अविलोको मैं लोकसवाया।मोहिनेहरतकोक्षिति राया॥
द्विधा प्रकारदरिद्रबखाना। एकसतोमयतममयआना॥

---

१ तुमको संतोष है हाथीके दान्तके पायके पलंगपर सोकर।

वचतनकरभोगअसंग्रह । यहिवीरिष्ठदारिद्रमोरगृह ॥
भूप अतिकृपादित्यागजहँ । सोकनिष्ठदारिद्रतोरमहँ॥
अमृतहमनमाहिंजाहिंअति।सोपिदरिद्रीतुमवतनरपति॥
गर्वदुःख विनाशीसंपतपायवृथानृपत्वं कत गर्वंत॥

दोहा ।

मौनधरो निजभौन को, करोगौन भूपाल ॥
तृष्णाचित्त विशाल जिहँ, वही परम कंगाल॥३२॥
ज्योंरवि[1] मास निशांत मैं, शांति अवश उत्पन्न ॥
त्यौं नृप उर धर भरत रव भयो ज्ञान संपन्न॥३३॥
अति वर्षा जल भरतरव, नृप उर ऊषर गाय[2] ॥
ताँयुत[3] तिहँ वितजलजभव, गयो नमो कर राय॥

पुनःदोहा ।

मम आयन पावनकरो, पावन पावन पाय ।

---

१ जैसै सूर्य्य समग्र राशीको भोगके मासकी अंतिम रात्रिके शेषमें शान्त होजाता है अर्थात् उसराशीके भोगसे उपराम होजाता है अथवा जैसे पूर्णमासीकी रात्रिके शेषमें चंद्र प्रभावसे सूर्य शान्त सा उत्पन्न होता है वैसेही राजाभी भर्तृहरिके वचनोके सम्बादसे शान्त होगया। २ पृथिवी । ३ताँयुत अर्थात् ऊषर युत होनेसे भी तिंह भरत रवसे वित्त अर्थात् उत्पन्न होनेसे राजाकी हृदय भूमिमें ज्ञान रूप जलज अर्थात् कमल भव कहिये उत्पन्न हुवा तो नमो करके गिया।

वक्ता नृप वतराजनिज, निर्भय ताँ प्रतिगाय॥ ध्वं

श्लोकः ।

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरा-
श्महे यावदित्थं शूरस्त्वं वाग्मिदर्पज्वरो ॥ ४
शमनविधावक्षयं पाटवं नः ॥ सेवंते त
धनांधा मतिमलहतये मामपि श्रोतु
कामाः मय्यप्यास्थानचेत्तत्त्वयिममसु-
तरामेष राजन् गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥

कवित्त ।

विभवोंके ईशतुम वागमकेईशहम,
भूपति भवान शूरवीर हम अतिहै ।
परप्राणी माहिं मद ताप तास नाशवेको,
ममगिरा चल चतुराईको धरतिहै ॥
सेवतधनाँधे तोकों पूजतहैंश्रोते मोकों,
मतिमलहेतहेतु लेतमोते मतिहैं ।
रावरो हमारो राज गुणोंके समाज सम,
अंतरकेराज माँहिं अंतरो महति है ॥ ३६ ॥

टीका चौपाई ।

राजन तुम पृथिवी पति राजे।हम राजे त्रिभुवनके साजे॥

वचमरे धाम विराजें। देख दोष बहुताँतें भाजें॥३७॥
भूप अरु केहरणें हारी। अंश तुमारी कठिन कुठारी॥
अमृत मूत्रा दित्याग सम।तजेपदारथनाहिं ग्रहें हम॥
गर्व प्रेरीचरहिंस्वतंतर।दुसहदुःखममसुखपरतंतर॥
आनंदी निजानंदकर।विषय भोग सुखके तुमकिंकर॥
करो दंड तुमदुष्टजनाको।सहिन सकोंमैं दुखःसोताँको॥
तुम डाटोंतिहँमुक्तचहेहम।तवममसंगिततुल्यतेजतम॥
महत राजवारेहमराजन।स्वलपराजतवसोममकाजन॥
तुमरे सदन सदौरेप पौरे। सहिन सकोंमैं वायक कौरे॥
तवनिकेतइत्यादिक दूषण।सोमम योग्य नभोभूभूषण॥
नमोमात्रजो भूपतिहारी।हमताँकेभीनहिं अधिकारी॥
तव आलय तनपाले लाजें॥ जाँते हम तुम दोनो राजे॥
ताँतेहमरे तुमरे माहीं।हेनृप अधिक अंतरो नाहीं॥४३॥
राजांतरमोंआहिविषमता।बाह्यराजगुणकीकछुसमता॥
असुरी संपत्केपतितुमहूँ।सुरीसंपदा के प्रभु हमहूँ॥४४॥
तुमस्वदेशके अर्थोंकेपति।रंकधनीकीकरोविषम गति॥

---

१ वमन। २ सहित द्वार पालोंके तुम्हारे पौर कहिये दरवाजहैं।

हमवाणीपतिनिजवाणीकर।करहिंतारतमतुमसमनरव...॥ ४६ ॥
निज प्रजारिके अरितुम वीरा।बलविख्यात रघुवर...
निजविभागकेहरणेकाजा । रक्षकतुमलोकनकेराजा...
बाहिर धनके हरता तस्कर।ताँके दंडक तुम भूप...बे ॥ ४
अर तवमन दुषमनतव अंतर।तुमरे बलको हरत निरंतर॥ ४
ब्रह्म सच्चिदानंद रूपतव।ढापलियो तिहँ यथाअभ्र रवि॥
मृषा अचेतनदुःखरूप तन।अरपरिणामी विपतावासन॥ ४८ ॥
तामैंअहंभावतवकीनो।नखशिखाग्रलौनिजवपुचीनो ॥
अज असंगलौं धर्म तुमारे। चित्त शत्रुते ढापे सारे॥४९॥
जन्म मरणलौ तनके कर्मा । चीने तुम अपने पर धर्मा॥
निजानंद ते तुमको तोरे। नीच विषय सुख वीचसु जोरे॥ ५० ॥
कामक्रोधलोभादिरूपधर।नटवतमोहेतुमकोमनअरि॥
तुमरेसुखकोअहिनिशिकाटे। सत पथतेतुमकोनितडाटे॥ ५१ ॥
कीनदीनतेदीनतुमहिंमन।जन्मजन्मकोमनतवदुषमन॥
तवआश्रयबलपायतिहारो।हर्योसर्वमनतेजतुमारो॥ ५२॥
तुमरे बलको जबमनधारे । तबेशुभाशुभ पंथ पधारे ॥

---

१ अपनी प्रजा के शत्रुके शत्रु ।

श्री … आश्रम

वचै[1]रितेकितेनासिधारे।जडस्वभावतेबाणप्रकारे५३॥
भूप अरोमनअरिजीते[2]।तबलगलवसुखहोतनमीता
अमृ…त्तशत्रुनिजजीता।तबमोसमतुमचरोअभीता५४
गर्व…जीतां[3]सभरिपुजीते।मनरिपुजीतां[4]सभरिपुजीते॥
…नोंमैंहोइननिग्रह।मानसकोविनमानसविग्रह[5]।५५॥
ताँते स्वांतर मनवशिकीजे।निर्भय पदशूरनकोलीजे॥
मदनमदादिशत्रुभक्ताके।हरहिंमोक्षसुखअरिहमताँके।५६
वायकसायककरतेंहहनके।समदमादिजनकेमनजनके॥
त्रिधातापतेताँकोराखहिं।तेनिजज्ञानपायभैनाखहिं॥५७॥
भूपपुनासमसूरशूरहम।गिराकिरणकरहरहिंजुभ्रमतम॥
रागद्वेषकोमदज्वरभारी।ताँकरजरतसर्वतनधारी ॥ ५८ ॥
ममवचनौषधि कोजनजबही।संयमसंयुतसेवहिंकबही ॥
हेतुसमेतप्रहारतापसब।लहितनिरतशयनिजानंदतब५९॥
अर तृष्णाकरबौरेजेनर।गहेंमानविनधनकणकाखर ॥
तनपोषतयोषितभोगार्थ।तेनलखहिंपशुवतपरमार्थ६०॥
अस पामर तवसेवतराजन।सेवहिंमोहिंमोक्षकेभाजन॥

---

१ विना । २ जीवित । ३ जीवित । ४ जीतागिया । ५ शरीर । ६ डारदेतेहैं ।

निजमतिकीमलहतकेकाजा। सुनतेवचनसरुचिमम [torn] ध्वं ॥
अरसहकामीभोगनिमित्ता। अरचहिंमोहजबेइक [torn]
प्रगटेजौतिहँपुण्यविशेषा। तेपितजहिंनिजनिखिलकले [torn] ॥
सुखपसुखेन शीघ्र बहुभोगा। करेगिराममताँज [torn] बे ॥ ६४
चपलचित्तमहिंवचनवसहिंमम। करहिंतिसेतबअचलअ [torn]
अचलनिजातमसुखभुक्तावत। भुक्ताचित्तअचेलतापावत॥
ब्रह्माकारभयोमनजाँते। भोग्यो गयो आपखलुताँते॥ ६४॥
पूरब चपलरूपनिजखोयो। चितसोंमिलचितचितसोहोयो॥
चितचितनामसजातीजाँते। भवतअभेदउभयचितताँते ६५॥
अचलनिजातम सुखकीदानी। ताँते अचलचतुरमम वानी॥
जहाँ संचरे गिराहमारी। करेतिसेतबनिज अनुसारी॥ ६६॥
ताँते वाक्य हमारे राजन। जन श्रद्धालूके अति साजन॥
ममवचनोंपर तवश्रद्धाजब। धरोतबैउरतापहरोसब॥ ६७॥
सर्व जनोंकेहितकीकीजे। निर्भय दान सकल को दीजे॥
यशकोतिलकधारजगजीजे। मानसदेहसफलकरलीजे६८॥

दोहा।

हरहु दुखीके दुःखको, सुखिये को सुखदेह।

---

१ पर्वतके समान २ स्थिरता।

वचं शिरोमणिवचन मम, रमो नरो मणि गेह६९॥
भूप ःहान भूपानको, कौन सप्तमेंऽध्याय।
अनुज वृद्धभ्रातानके, धस्योमध्यमोऽध्याय॥ ७ ॥

गर्वज

दोहा।

अष्ट अष्ट श्लोक कर, नृपन गर्व संताप।
अमृत वचन चूरण सहित, चूरण करहिंकलाप॥ १॥

श्लोकः।

विमलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा विधृतमपरै र्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा॥ इहहि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुंजते कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः॥ ७६॥

चौपाई।

कछुकपुरनकोहोकरराजा। याँमदज्वरनरकरतअकाजा॥
विमल चित्तजनकेचितधंने। पूर्वसुजगत जिनहुँनेजंने॥
कमलासनतेआदिमहावर। गर्वकरहिंबनहैनकऱ्योपर॥

अनुज अर्थात् सबसे छोटा केवल तीन श्लोक मात्र सातवां अध्याय अपने बड़े १२ भाइ ओंके मध्यमें विराजमान हुआ.

जगत अनंत अनंत फणोपै। धन्योअनंत नगर्व ... ध्वं
परुषरामतेआदिप्रवीनों। जितभवकोत्रिणवतत...
इंद्रादिकपुनअपरजुधीधर। याँजनलोकाविखेअ...
चौदशभुवनराजकिलभुंजत। स्वपनेहूँमदज्वरन...बे ॥ ४
मंदभाग्यजे आदि रंकनर। तेजडनवधनसुरापा...
बंध मुक्ति विधि लखेंनअंधे। कनकबधूके सुखमैं बंधे ॥
अविनयवानपरमअभिमानी। व्याकुलइंद्रयबुद्धिविहानी॥
किंचितसंपतपायदुष्टजन। करहिंगर्वअतितुच्छकृपणमन॥
खानपानगृहवसननकोहित। चहोंखलोंतेमैंन कदाचित॥
भिसवरकेभोजनकरहमअलं। अचनअर्थअलंमधुरगंगजल॥
शयनहेतममबसबसुधातल। चीरदिगंबरवल्कलकरअलं॥
कछुपुरपतिअरनवधनपाए। अधिपातिधनपतिजेगर्वाए॥
ताँते याचनको दुख जोऊ। मैंन सहारसकों अब सोऊ ॥

दोहा।

मुक्ति भुक्त संयुक्त हर, भजोंपरणफल खाय।
पर नदुर्जनोंकेघरन, देहि शब्द कहुँ जाय ॥१०॥

---

१ तृप्त। २ पर्य्याप्त। ३ आनन्द।

127 14.6.61

वचो ष्टं मधुनो घृतादिरसवत् या प्रस्र-
भूप रं देवी वागमृतात्मनो रसवत
अमृ तृप्तावयम्॥कुक्षौयावदमी भवंति-
गर्वज य भिक्षाहृताः सक्तवः तावद्दास्यकृ-
ताञ्जनैर्नहिधनैर्भोगान् समीहामहे॥७७॥

पुनः चौपाई ।

फलफूलादिशाकसतवाबर।यहिजोल्यावैंहमाभिक्षाकर ॥
अचवों तिहँ सुरसरिजलपीके।शांतकरोंजठरागनिनीके
ताप चित्तको हरे जापहर।लहों निजातमसाधुसंगकर॥
सुधास्वरूप ब्रह्म वितवेदी।चिद्जड़ ग्रंथिसमूलप्रभेदी॥
वाणीजाहिं भवानी केसम।श्रवति सुधांकअहं ब्रह्मासम॥
सर्वगिराते उत्तम वानी।जाँके गहे सर्व दुख हानी॥१३॥
मधुतेक्षीरखांड घृतरसज्यों।स्वादुवंतअतिसंतशब्दत्यों॥
गिरातिनहुँकीश्रवणमननकर।तृप्तभवतममचित्तनिरंतर।
जबलगइममसतगुणवरतन।तबलगधनहितभजोंनभूपन ॥
भृकुटीनैन बैन मुखउरकर।भ्रमत सर्वदाद्रव्य गर्व कर॥
शिश्नोदर पर धर्म विहीनें। पथपरमार्थ परार्थ न चीनें॥

ताँ पदाति व्है ताँते वित्ता।करोन संग्रह भोग [illegible]ध्वं
ताँहिपामरोंतेजनपामर।चाहितद्रवणहिं सहित[illegible]
मणीफणीके शिरकीजैसे।जो जाचे सोबाचे कै[illegible]
विषय भोगकेहितवांछेवित।धनकेहेतधनाढहि[illegible]बे ॥ ४
ताँते विषय मोह मैं छोरा।धनधनाढ्यसों काम न[illegible]

दोहा।

तन रक्षा भिक्षा करे, गुरुशिक्षा उरपोष।
भोग भूप धनमोक्ष रिपु, मोक्षकरे हितमोक्ष॥१९॥

श्लोकः।

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो वयं च स्थूलेच्छा महति चपदेबद्धमनसः ॥ जरादेहं मृत्युर्हरति सकलं जीवितमिदं सखे नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः ॥ ७८ ॥

पुनः कवित्त।

तजे दुराराध्यस्वामी कृपण कुमग गामी,
बाजिवत चलचित्त भूपनके मानिये।

वच अतिसथूल चाहि पुरी होति नाहिं तातें,
भूप अमनताहि माहिंपद जो महानिये ॥
अमूर कायहरे कालसमुदाय प्राण,
गर्व तपकरों सखे विदुखों बखानिये ।
बिना आन मग श्रेयको नमध्यजग,
तप नाम चित्त की एकाग्रता कोजानिये ॥ २०॥

श्लोकः ।

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै
विषयिणाम् ॥ इदानीं संप्रेक्ष्य क्षितित-
लभुजः शास्त्रविमुखान् अहो कष्टं सापि
प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति ॥ ७९ ॥

पुनः सवैया ।

श्रुतिबोधविरोधनिवारणकारणप्राकहुतोसुसखासजनाँको ॥
कछुकालगयेरसिआनदयेसुखभोगकिलाभनिमित्तधनाँको ॥
अतिखेदसुविद्याअविद्या भई अबमोक्षनभोगजनेंपुरुषाँको ॥
प्रतिवासरजातअधेतिअधेखलवेदविरुद्धविलोकनृपाँको ॥

पुनः टीका—चौपाई ।

पुरामातवतथी विद्वत्ता। पुरुषोंके कल्य... नि...
सुजनोपदेसु क्तिहितवेदा।तिनहुँ जन्योतिन उ...
स्वारथसिद्धारथवैरागहिं।जन्योंविवेकसखाति...बे ॥ ४...
युगलसखेमिलहयोंयुगमभ्रम।ज्योंरविदगतमहरतवि...
शास्त्र ज्ञानइमबंधनहर्त्ता। पूर्वसुभयो मुक्ति को कर्त्ता ॥
किंचितकालवितीतभयोजब।वहीबोधजनमुग्धनकोतब॥
विषयसुखहुँकेसिद्धिनिमित्ता।होतभयोक्रमकरततवित्ता॥
तिनोंजनोंजबतंत्रअधीते ।करतभयेनृपश्रवणसप्रीते ॥
गुरुगोविप्रनिदरसनमाहीं। त्रिधाअनन्यभक्तिउरजाहीं ॥
धर्मीसतवादीमनदाया । शुभगुणमंदिरअसनरराया ॥
ताँतेआमनायसुणसादर । देतद्रव्यबहुज्योंजलवादर ॥
इमभोगन को कारणहोई । अहोखेद अबविद्या सोई ॥
दिनदिन अधेअधेकोधावे।मुक्तभुक्तनहिं उभयउपावे ॥
यामेंअवरनकारणकोऊ।क्षितितलभुक्ता नृप गणहोऊ॥
कृपण अभक्तमुग्धअतिपापी।दुर्मगगामीमृषाअलापी ॥
शास्त्रोंमाहिंनाहिंरतिराई।अगुणअयशनिधिअसनरराई २९
सोअब विद्या देखतिनोंको । नाहिंमुक्तभी देत जनों को॥

वचनसथूल चाहि पुरी होति नाहिं तातें,
भूप मनताहि माहिंपद जो महानिये ॥
अमृत कायहरे कालसमुदाय प्राण,
गर्व तपकरों सखे विदुखों बखानिये ।
विना आन मग श्रेयको नमध्यजग,
तप नाम चित्त की एकाग्रता कोजानिये ॥ २०॥

श्लोकः ।

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये गता कालेनासौ विषयसुखसिद्धयै विषयिणाम् ॥ इदानीं संप्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखान् अहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति ॥ ७९ ॥

पुनः सवैया ।

श्रुतिबोधविरोधनिवारणकारणभ्राकहुतोसुसखासजनाँको॥
कछुकालगयेरासिआनदयेसुखभोगकिलाभनिमित्तधनाँको॥
अतिखेदसुविद्याअविद्या भई अबमोक्षनभोगजनेंपुरुषाँको॥
प्रतिवासरजातअधेतिअधेखलवेदविरुद्धविलोकनृपाँको ॥

पुनः टीका—चौपाई ।

पुरामातवतथी विद्वत्ता। पुरुषोंके कल्याण नि
सुजनोपढेमु क्तिहितवेदा।तिनहुँ जन्योतिन उ
स्वारथसिद्धारथवैरागहिं।जन्योंविवेकसखाति ॥ ४
युगलसखेमिलहयोंयुगमभ्रम।ज्योंरविहगतमहरतवि
शास्त्र ज्ञानइमबंधनहर्त्ता। पूर्वसुभयो मुक्ति को कर्त्ता ॥
किंचितकालवितीतभयोजब।वहीबोधजनमुग्धनकोतब॥
विषयसुखहुँकेसिद्धिनिमित्ता।होतभयोक्रमकरततवित्ता॥
तिनोंजनोंजबतंत्रअधीते ।करतभयेनृपश्रवणसप्रीते ॥
गुरुगोविप्रनिदरसनमाहीं। त्रिधाअनन्यभक्तिउरजाहीं ॥
धर्मीसतवादीमनदाया। शुभगुणमंदिरअसनरराया ॥
ताँतेआमनायसुणसादर । देतद्रव्यबहुज्योंजलवादर ॥
इमभोगन को कारणहोई । अहोखेद अबविद्या सोई ॥
दिनदिन अधेअधेकोधावे।मुक्तभुक्तनहिं उभयउपावे ॥
यामेंअवरनकारणकोऊ।क्षितितलभुक्ता नृप गणहोऊ॥
कृपण अभक्तमुग्धअतिपापी।दुर्मगगामीमृषाअलापी ॥
शास्त्रोंमाहिंनाहिंरतिराई।अगुणअयशानिधिअसनरराई २९
सोअब विद्या देखतिनोंको। नाहिंमुक्तभी देत जनों को॥

वर्द्धतनहिंपठतनआपहिं। कबहूँकहूँपुण्यपरतापहिं ३०॥
भूप ऽथासमागमबनहै। सुनत अरुचिनहिंतांमैंमनहै॥
अमृत भवअर्थनमाहीं। कथाअर्थकछुबूझतनाहीं ॥ ३१॥
गर्वतिनजबकछुदर्वहिं। देहितांहिंकोतबअतिगर्वहिं॥
अनुचरवक्ताजाने। तांतेकरतनअतिसनमाने ॥ ३२॥
...न्वक्ता कीइच्छाजोहै । तांते तृप्त कदापि न होहै ॥
तांतेजोबुधिमानअहेजन। भूपनभवनेगवनकरोजिन ॥ ३३॥

दोहा ।

निर्दूषण भूषण महा, रूखन सेवहि सोय ।
तबै तनय विद्या जनें, भुक्त मुक्त शुभदोय ॥३४॥

सोरठा ।

विद्या वधूप्रसूत, शाँतिध्वनी भूमेऽभवत ॥
जने प्रबोध सुपूत, हने कलेश अशेष तब ॥ ३५॥

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतैर्भुवस्तस्या लाभे क इह बहुमानः क्षितिभुजाम्॥तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेपि पतयो विषादे कर्त्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युतमुदम् ॥ ८० ॥

श्री [illegible] आश्रम

॥ध्वं

पुनः दोहा ।

भयो गर्व बहु नृपन को, वरणों किं सम [illegible]
केवल वृथा निमित्त बिन जडता सूचक [illegible]
भई अभुक्त न निमष अपि, भूपगणो कर[illegible]वे ॥ ४[illegible]
चगल सगल भूपानकी, [illegible] पाय गर्वाय ॥ [illegible]
तास अंश पुन अंशातिहँ, ताँअवयव लव लेश ॥
तिहँ उच्छिष्टके पति भये, गर्वहिं हम दुहनेश ॥३८॥
गनका सम क्षिति बहुपती, पुनः सर्वकी जूठ ॥
ताँहिं भोग कर भूपसठ, मुदिता धरें अनूठ॥३९॥
परम निंद यहि कर्म कर, पश्चाताप करेन ॥
उलटे मदमुदिता धरें, धिक् पुरुषाधम तेन॥ ४० ॥
पुन धिक धिक तिन नरनको, तिने घरन जेभाग ॥
नमो करन तन भरण हित,शरण विश्वँभर त्याग४१

श्लोकः ।

गंगातरंगकणशीकरशीतलानि विद्या धराध्युषितचारुशिलातलानि ॥ स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि यत्सावमानपरपिंडरता मनुष्याः ॥ ८१ ॥

वच[illegible]

पुनः सवैया।

भूप अ[illegible]

[illegible]तरंगकीबूँदकणीकरशीतलचारुहिमांचलकीशिल।

अमृ[illegible]फलादिउपानधरेशिवकोनितसेवतदेववधूमिल॥

गर्व [illegible]नमेंनिजजोजनदेदिलताँगिरिकोकतकाललयोगिल॥

[illegible]नसहीअपमानसहीविदधीरसहीनृपधामअहीविल

श्लोकः।

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहां पयःस्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्यसरिताम्॥ मृदुस्पर्शाशय्यासुललितलतापल्लवमयी सहंते संतापं तदपि धनिनांद्वारि कृपणाः॥ ८२॥

पुनः सवैया।

प्रतिकाननवृच्छनतेमनवांछितलाभसुखेनफलादिअपारा॥

सरिताकिसथानसथानविशेशुचिसीतलमिष्टमिलेबहुवारा॥

---

१ अपमानसे अर्थात् नीच पुरुषही अपमान को सहारता है और विद अर्थात् विद्वान् धीर पुरुषको राजालोगों के घर सर्पों की बिलों जैसे दीखते हैं।

जलपत्रवतीमृदुसापरशीतलपादिकेहोवतभूपन...ध्वं,
सटकेमतिमानमहाभटकेमतिमानतहाँकतहोव...

किं कंदाः कंदरेभ्यः प्रलयमु...
निर्झरा वा गिरिभ्यः प्रध्वस्ता वा तरु... ॥ ४
सरसफलभृतो वल्कलिन्यश्च शाखा...
वीक्ष्यंते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्र-
याणां खलानां दुःखोपात्तालपवित्तस्मय
पवनवशान्नर्तितभ्रूलतानि ॥ ८३ ॥

कवित्त ।

कंदराते कंद मूल कहा निरमूल भयो,
वारी वारे नग किधों देत हैं न बनेको ।
मीठे फलों वारी डारी तरों की न फल देहिं,

---

१ जलवत् शीतल कोमल तथा निर्मल पत्रों वाली मृदु कोमल स्पर्श वाली तल्प अर्थात् शय्यादिके होते भी राजाओं के द्वारे पर (सटके) अर्थात् डारके अपने मति और मानको महा भटकताहै वह मूर्ख पुरुष जिसको अपनी मति ममा अर्थात् ममत्व नहीं है परन्तु बुद्धिमान् वहां हैरान कैसे होसकता है अर्थात् कभी नहीं। २—जल।

वर्चा द्रुमदेत हैं न वलकल जनको ॥
भूप सों मनाक धन साध्यके मदांध भये,
अमृगार साथ जो भ्रमावें भ्रूलतन को
गर्वके कुमुखों को सबल सो पुरुष पेखे,
हा कैसे तजे ऐसे बन चिंतामणि को ॥ ४४ ॥

श्लोकः ।

मृत्पिंडो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं नन्वणुस्तं स्वीकृत्य सदैव संयुगशतै राज्ञांगणा भुंजते ॥ ते दद्युर्ददतेऽथवा न किमपि क्षुद्रादरिद्रा भृशं धिग्धिक्तान् पुरुषाधमान् धनकणं वांछंति तेभ्यो ऽपि ये ॥ ८४ ॥

दोहा ।

वल्यो जलधि जलरेख कर, यहिक्षिति मृतिका पिंड
भोगत ताको भूपगण, कर बहु समर प्रचंड॥४५॥
खंड खंड कर अरिनके, पिंडशरणके संग ॥

वंड वंड कर धरणि [illegible]ब, भोगत भूप उमंग[illegible]ध्वं
द्रव्य गर्व कर अंध मन, कृपण दरिद्री [illegible]
कुटिल कुमग गामी अधम,कामी दुःख स[illegible]वं ॥ ४[illegible]
तजके मति निज मानको, जेमतिमान पु[illegible]
धनका कनका वाँछते,ताँते धिक धिक तान[illegible]
सूमधनी धनकी क[illegible]ो, देंहिंकिधों नहिं देंहिं ।
बुद्धिमानकीबुद्धिको, मानर[illegible]त हिर लेंहिं ॥४९॥
दाम मात्र न ददामि धन, करहिं निंद अपमान ।
पुरुष प्रतिष्ठा मानको, जीवन मृत्युसमान ॥ ५० ॥
हरके वरके भोगको, त्रिंपतहिं नृपन निकेत ।
भोग प्रेत कर इमग्रसे, शशी राहु रविकेतु॥ ५१ ॥
संचित अर्थ अनर्थ कर, भोगत साधु जुतास ।
लेतपाप सभ आपतिहँ, देत पुण्यनिज राशि॥५२॥
भूपन सम भूपानके, भोगत भोग जु साधु ।
सो तदवत दुर्गति गहे, समदमादि कर बाध॥५३॥
इत निंदा उत मंद गति, तास भ्रष्ट बिब लोक ।
ज्वरवतको घृत वतहते,शुभको नृपको ओक॥५४॥

सोरठा ।

भूप साधु मनमाहिं, राज अंश कांजी मिले ।
अमृ शीघ्र फटजाँहिं, गहेमुमोक्षी नाहिं तिहँ॥५५॥

दोहा ।

साधुधीधेनु को, दुग्ध सुकृत संबूह ।
उपभोग घासादि तिहँ, भूपगोप विधि ऊह ॥ ५६॥
बहुभोगों कर पुष्ट तन, तनपुष्टे मन पुष्ट ।
मनपुष्टे मद मदन लौं, पुष्ट होत रिपु दुष्ट ॥ ५७॥
जन विरक्त को भूपजिन, बहुत भुगावे भोग ।
नातर साधु असाधुहै, पाप भूप को होग ॥ ५८ ॥
मलिन अन्न कर मलिन मन, शुद्ध अन्न कर शुद्ध ।
जलवत चित जासों मिले, भवत तथा विधि बुद्ध५९
वर धनाढ्य सत भाव कर ,यजे संत को जोय ।
गंगोदक के पान सम, तृषा कुगति हत दोय॥६०॥

सोरठा ।

ताँते यथाधिकार, यजे साधुको भूप वर ॥
नाँतर तिने धिकार, देत लेतजु विचार विन ॥ ६१ ॥
नृप धन धनुते धीर, शरके सम सरके झटति ॥
पोखें चित्त शरीर, हरिभज भिक्षा अन्न कर ॥ ६२ ॥

दोहा ।

भयो भरत वैराग्य को, अलं अष्टमोऽध्या[illegible]

धर्म विमुख भूपान को, निंद्यो तास मिल[illegible]वे ॥ ४ ॥

दोहा ।

नवमें रवि वृत कर कहें, दशा प्राक विदम[illegible]

सिमर सिमर गतादिननको, हसत समाधि उथान १॥

श्लोकः ।

ये वर्धन्ते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःख-
भाजो ये चाज्ञत्वं दधति विषयाक्षेपपर्य
स्तबुद्धेः॥ तेषामंतः स्फुरितहसितं वास-
राणां स्मरेयं ध्यानच्छेदे शिखरिकुहर
ग्रावशय्यानिषण्णः ॥ ८५ ॥

पुनः कवित्त।

गुफाके पखानपै समाधिते उत्थान पाय,
ब्रह्मध्यान सुखको मैं ध्यानकीनों अहिसे ।
बीतेजे दिहारे दुखवारे ताँसमारहँसो,
दुष्टधनी द्वारेजे भ्रमान वारे अंहिसे ॥

१ स्वाभाविक ही । २ थे ।

वय जडता कें हेतु याचना निकेत जेथे,
भूप लाभ के समेत मद देत अहिसे ।
अमृ रीमित्तहतेअबवाहिअहिगते,
गर्व तेंअहिमोर वहिआहिअहिसे ॥ १ ॥

श्लोकः ।

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं तदादृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि ॥ इदानीमस्माकं पटुतरविवेकांजनजुषां समाभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म तनुते ॥ ८६ ॥

पुनः वही झूलना ।

भोगसंयोगकरदुष्टअज्ञानअरिमोरउरमाँहिंभयोपुष्टभाना॥

---

१ भोगलाभके कालमें उन दिनोंमें मेरेको अहि अर्थात् सर्प जैसा मद होजाताथा अर्थात् कामके लाभ होनेसे क्रोधरूप मदसर्पकी तरह पैदा होजाताथा २और अबतो जो मेरी बुद्धिका नाश किया करतेथे वे दिन चलेगये और वर्तमानमें बीतने वाले मेरे दिनतो मयूरके समानहैं और जो बीत चुके हैं वे सर्पां जैसेथे अर्थात् उनसर्पोंको वर्तमान मयूर निगल गये हैं.

समरके तिमरमै संसकारोपजेसारसंसारकोना[illegible] ध्वं,
बुद्धिकेनैनमोह[illegible]नअंजनदियोपादत्रैनैन के सव[illegible]
भयोअबचतुरमैंलोकदशचतुरमैंब्रह्मकोवेदकर[illegible]
[illegible]वे ॥ ४[illegible]

श्लोकः ।

यदाकिंचिज्ज्ञोहं द्विप इव मदांधः [illegible]
भवं तदा सर्वज्ञोस्मीत्यभवदवलिप्त
मम मनः ॥ यदा किंचित् किंचित् बुध-
जनसकाशादवगतं तदा मूर्खोस्मीति
ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥ ८७ ॥

पुनः कवित्त ।

चीनों जब किंचित करिंद यों मदांध भयो,
तबीमोहिं जानलीनो सबी ज्ञाता आपको ।
तास मदतापके प्रतापकर मोरे मन,
माहिं कछुरह्यो नाहिं ज्ञान पुण्य पापको ॥
स्वच्छ सतसंग कीनों तब कछु कछु चीनों,
मूढ जानों आपको विहानों मद तापको ।

व[illegible]नको मेलाचारु मेलेचारुसाधनको,
भूप[illegible]के प्रतापकर पायो मैं निजापको ॥ ३ ॥

अमू[illegible] श्लोकः ।

ग[illegible]ाला मां प्रत्यनवरतमिंदीवरदल
[illegible] चौरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेत
[illegible]नया ॥ गतो मोहो स्माकं स्मर कुसुम
बाणव्यतिकरज्वलज्ज्वाला शांता तदपि
न वराकी विरमति ॥ ८८ ॥

पुनः वृद्धनराजछंद ।

सप्रीति नीच नारिए सदीवमें निहारहै ।
सरोज नील पत्रकांत चोर चक्षु डार है ॥
इने अलक्ष भावको लखो चुँरात चित्तमों ।
रचोरनैनसो नमेंस्वभावको निहारहै ॥
भयो विशुद्ध मोहि चित्त मोहको निमित्तनाहिं ।
मैन फूल बान कीकृशानु कोप्रहार है ॥

---

१ साधुपुरुषों का मेला चारु अर्थात् उत्तम होता है क्योंकि ज्ञानके वैराग्यादि चारों साधनों कोमेल देता है ।

अजेपिएछिनार नारि नारको नफेरहै । [illegible]ध्वं
तियाक्षस्यालतेनमेर चित्त शेरहारहै ॥ ४

दोहा ।

[1]नाहिंमेरुमनमेरको, दृगपतंगपरझूल । [illegible]बे ॥ ४
चपलसकेकरअज्ञके, चित्ततूल कें तूल ॥

श्लोकः ।

रे कंदर्प करं कदर्थयसि किं कोदंडटंका-
रवैः रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः
किंत्वं वृथा जल्पसि ॥ मुग्धे स्निग्ध
विदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं चेत
श्चुंबितचंद्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ८९

पुनः कवित्त ।

रे रे मीनकेतु किं कसीस देत पानको,
कमानके टंकार ध्वनो सों नमन त्रसहै ।
अरी मूढ पिक काको मृदु चारु वचनाँको,

---

१ मेरे मन रूपी मेरु पर्वतको स्त्रीके नेत्ररूपी पतंगेके पडनेसे (झूल) चंचलता नहीं होती किन्तु जिन अज्ञानी पुरुषोंके चित्त (तूल) रुईके तुल्य हलके हैं उनहीको वह पतंगा चपल करसकताहै ।

व॰ बकेंन असाँको ताँको कछुरस है ॥
भू॰ सनिगध विदगध मुगधलोल,
अ॰ कटाक्षों तेरे करमोंको बसहै ।
ग॰ चूडामणि जाँके चुमेचित्तपाँउताँके,
॰ अमीध्यानवाँके मेरोमनवसहै ॥ ६ ॥

दोहा ।

तव पदाति थो भ्रांति मों, भ्रम्योंगेंद कपि सान ॥
चित्तशाँत गत भ्रांति अब,मैंप्रभुअनुग भवान॥ ७ ॥

श्लोकः ।

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा
जगदंतरात्मनि ॥ नवस्तुभेदप्रतिपत्ति-
रस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेंदुशेखरे ॥ ७॥

पुनः चौपाई ।

स्थावरजंगम सभजगताके।ईश्वरपरमनाथगिरिजा के॥
अरश्रीविष्णुदेवकेमाहीं।जाँमहिंकछूविषमतानाहीं।८॥
सर्वात्मा सब जगके अंतर।व्याप रह्यो सम एक निरंतर॥

---

१ हे प्रभो शंकर मैं अब आपका अनुग अर्थात् अनुसरण करताहूं ।

पुनः उमाधवमाधवदोमहिं। भेदवतीमतिमोमहिंसो ध्व,
तदपि सुमम भक्तीमधताँके। तरुणशशांक … खे
भेदे भेदजासकरुणाते। ममअति भक्तितासमैंत…
…वे ॥ ४

श्लोकः ।

मातर्मेदिनि तातमारुतसखे तेजःसुब[1]
जल भ्रातर्व्योमनि बद्ध एष भवतामन्त्य
प्रणामांजलिः ॥ युष्मत्संगवशोपजात
सुकृतोद्रेकस्फुर न्निर्मलज्ञानापास्तसम-
स्तमोहमहिमालीये परब्रह्मणि ॥ ९१ ॥

पुनः छप्पय ।

वसुधा मात कं बंधबंधुशुभहेसखि आगे ।
तात वात वर भ्रात गगन में तुम सब आगे ॥
एह अंत की नमो जोर कर करों सदीने ॥
तुमरे संग प्रताप सुकृतमैं सर्वज्ञुकीने ॥
तिनज्ञान भानु निर्मल कयों हान महा तममोह सब॥
मैंलीन भयो पर ब्रह्ममैं तुमसों रह्यो न काम अब११

१ क—जल हेअग्निरूप सखे ।

श्लोकः ।

र्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कां-
नास्मभूभोंगेभ्यःस्पृहयालवोनहि
कानिस्पृहाणामसि ॥ सद्यः
पलाश पत्रपुटके पात्रे पवित्रीकृते
भिक्षासक्तुभिरेव संप्रति वयं वृत्तिं समी-
हामहे ॥ १२ ॥

पुनः नीलछंद ।

मो तज मात रमा अब तूं भज आन किसे ।
जे तव भोगन हेत भजें तुम सेवतिसे ॥
मैं नचहों भव भोग कहा तुम मोहि भजें ।
लागत कीनिसप्रेहनकी चहिती न लजें ॥ १२ ॥
पत्र पवित्र पलाश के नौवन ते हरके ।
सुंदर ताँपुट का कर मैं करमैं धरके ॥
भीख पवित्र पवित्र घरे सत वादि गहों ।
गंगकि पाथ किसाथ भखों कुखि दाह दहों ॥१३॥

ध्वं

सोरठा ।

हम योगी निहकाम, प्राणधरें इम हर भजें ॥
तुमसों रह्यो न काम रमो रमा भोगी जहाँ ... वे ॥ ४

श्लोकः ।

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्...
रावयोः ॥ किं जातमधुना येन यूय...
यूयं वयं वयम् ॥ ९३ ॥

पुनः कवित्त ।

पूरबले दिनों विखे तेरी मेरी प्रीति, सखे
ऐसेहोति भई तुमहम हम तुम हैं।
एकठो विहार शैन बैसनो अहार हुतो,
अबकहा भयो तुम तुम हम हम हैं ।
ताते तबे परे जल लवजलजातसोऊ,
जल जातपरेटेरेतूं[1] मैंतोंकेसमहैं ।
आदि निरभेद[2]वति मतिनिरवेद[3] हती,

---

१ अर्थात् तूं जल बिंदु वत् है और मैं तप्त लोहतलवत हूं अथवा मैं कमलपत्र वत् निर्लेपहूं । २ परस्पर अभेदवाली । ३ वैराग्य ने विनाश करी ।

वे मोह तोरा मोहिताँते उपरम है ॥ १८ ॥

श्लोकः ।

अश्नीमहि वयं भिक्षामाशावासो वशीमहि ॥ शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥ ९४ ॥

पुनः तोटक छंद ।

हमभोजनभीखकुअन्नकरे ॥ दिगचारकेअंबरचारधरें ॥
कंलभूतल पैसुखसंगसमें ॥कछुकाजनराजनसाथहमें ॥

श्लोकः ।

न नटा न विटा न गायना न परद्रोह निबद्धबुद्धयः ॥ नृपसद्मनि नाम के वयं स्तनभारा नमिता न योषितः ॥ ९५ ॥

पुनःतोटक छंद ।

नटभाटविटाभटगीतकना॥परद्रोहविखेहमप्रीतिकना॥
कुचभारनिमीललनानहमें॥नृपधामसखेकितकामरमें॥

श्लोकः ।

यदेतत्स्वाच्छंद्यं[1] विहरणमकार्पण्यम-

---

१ स्वच्छ ।

शनं सहायैः संवासः श्रुतमुपशमैक ध्वं
फलम् ॥ मनोमंदस्पंदंबाहिरपि
स्यापि विमृशन् न जाने कस्यै वे ॥ ४
णतिरुदारस्य तपसः ९६ ॥

कवित्त ।

स्वच्छ व्यवहार विना दीनता अहारबनाँ,
सदाचार वार जनाँ बीच वास लयोहै ॥
वेदाध्येन ब्रह्म हक शांत फल लाभइक,
मंद मंद मनको संपद दरसायो है ॥
ऐसे गुणोंसों संपन्न भयो अबमेरोमन,
कोउदार पुण्य जिन ऐसो फल दयोहै ॥
चिर रातों माहिंशोधा नाँहिंहमताँहिंबोधा,
तपतोनकोऊकियो हरद्यालभयोहै ॥ १८ ॥

दोहा ।

भरतशतक वैरागको, अलं नवम अध्याय ।
ताँमैं अनुभव भरत को, गायो कवि सत भाय ॥९॥

दोहा ।

भूपाकर दशमेभनें, साधारण उपदेश ।
अमूक कर जनोंके, हने कलेश अशेष ॥ १ ॥

श्लोकः ।

संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि
लं विपाकःपुण्यानां जनयति भयं
मे विमृशतः॥ महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरि-
गृहीता श्चविषया महांतो जायंते व्यस-
नमिवदातुं विषयिणाम् ॥ ९७ ॥

नराज छंद ।

विचित्र ए चरित्र जो भयो तपंन लोकमैं ।
मनाक मात्रक्षेम रूप तास नाविलोक मैं ॥
विपाक पुण्य पुंजको विचारहों अहं जबे ।
वही अनंत भीति को जनंत है सही तबे ॥ २ ॥
महाँन पुण्य वृंद को कलेश धारजो करे ।
महाँन भोगनारिलौ वसें तवें चिरंघरे ॥
वरिष्ठमान भोगते सराग सो भुगंतहै ।
लखे न जंतु कालको जु कौन काल हंतहै ॥ ३ ॥

विखे पुमान दोविखे अवश्य एक तोटरे । ध्वं
चलें प्रतंत्र भोगजे अनंत रोग कोधरे ॥
जनाप जो तजे इनें भजे निजाप को तबे
मतो समष्ट को अमून होत अन्यथा कबे ॥ ४ ॥
निकाम मोक्षको करें सकाम ते जमे मरे ।
अहो सकाम काममों तथापि मूढ संचरे ॥
लखे सकाम कामको ततज्ञ अग्नि के समा ।
हहा कहा वृथा वितै सुअज्ञ ताहिं मो समा ॥ ५ ॥

दोहा ।

मुक्ति हेतु निहकामहैं, भुक्तदेत सहकाम ॥
केवल दुःख निमित्तहैं, तजो जनो अपकाम ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्था-
यिनी यौवनश्रीरर्थाः संकल्पकल्पा
घनसमयतडिद्विभ्रमाभोगपूगाः ॥ कं-
ठाश्लेषोपगूढं तदपि च नाचिरं यत्प्रि-
याभिः प्रणीतं ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत
भवभयांभोधिपारं तरीतुम् ॥ ९८ ॥

व॰ पुनःकवित्त ।

भूप। कलोल तुल्य आयुषा चपल कुल,
अभ्र की द्युति पल कछु इसथितहै ।
चलंचित्तके समान भाव सब हानवान,
घटाविखे छटावत भोग मलइतिहै ॥
कंठमों अलिंगना महानपीनअंगनाको,
ताँतेजो आनंद नाहिं चिरसो रहितहै ।
नरकाय पाय नरो स्वसरूप चित्त करो,
भवभयसिंधु तरो पुण्यसमो वितहै ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्ज-
राद्दूरतो यावच्चेंद्रियशक्तिरप्रतिहताया
वत्क्षयो नायुषः ॥ आत्मश्रेयसि ताव-
देवविदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् संदीप्ते
भवने प्रकूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ९९॥

पुनः सवैया ।

निजदेह अरोगसभोगलखोनापिखोजबतीक समीप जरा।
गुणमोंशक तीजबलौन गती दरशो नहती जुसबीउमरा॥

निजश्रेयनिमित्त अमित्तकरो पुरुषारथकोसुनरों द्धवं
जरते गृह कारण कूप खनें बहुउद्यमतो अँध कू

श्लोकः ।

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः
स्थीयते गर्भमध्ये कांताविश्लेषदुःख
व्यतिकरविषमे यौवने विप्रयोगः ॥
नारीणामप्यवज्ञाविलसति नियतं वृद्ध-
भावोप्यसाधुः संसारे रे मनुष्या विदत
यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् १००॥

पुनः अर्ध नराज छंद ।

अमेध्य कुक्षिमे महाँ । रुकंत काय सो तहाँ ।
विराजमान होयहै । महान कष्ट जोय है ॥ ९ ॥
जबैप्रसूत वायुते । स दुःख बाहिरावते ।
कृमादि गंदग्यादिते । सहे महा विषादते ॥ १० ॥
प्रहार मात तातकी । सहे सखादि भ्रातकी ।
शिशादि मों अनंतही । सहे कलेश जंतुही ॥ ११ ॥
पुना युवा विखे जबे । त्रिया वियोग व्हे कबे ।

व॰

पुनःकवित्त ।

भूप कलोल तुल्य आयुषा चपल कुल,
अभ्र की द्युति पल कछु इसथितहै ।
चलचित्तके समान भाव सब हानवान,
घटाविखे छटावत भोग मलइतिहै ॥
कंठमों अलिंगना महानपीनअंगनाको,
ताँतेजो आनंद नांहि चिरसो रहितहै ।
नरकाय पाय नरो स्वसरूप चित्त करो,
भवभयसिंधु तरो पुण्यसमो वितहै ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्ज-
रादूरतो यावच्चेंद्रियशक्तिरप्रतिहतायाया
वत्क्षयो नायुषः ॥ आत्मश्रेयसि ताव-
देवविदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् संदीप्ते
भवने प्रकूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ९९॥

पुनः सवैया ।

निजदेह अरोगसभोगलखोनापिखोजबतीक समीप जरा।
गुणमोंशकतीजबलौन गती दरशो नहती जुसबीउमरा॥

निजश्रेयनिमित्त अमित्तकरो पुरुषारथकोसुनरों ध्वं
जरते गृह कारण कूप खनें बहुउद्यमतो अँध कू

श्लोकः ।

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः
स्थीयते गर्भमध्ये कांताविश्लेषदुःख
व्यतिकरविषमे यौवने विप्रयोगः ॥
नारीणामप्यवज्ञाविलसति नियतं वृद्ध-
भावोप्यसाधुः संसारे रे मनुष्या विदत
यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् १००॥

पुनः अर्ध नराज छंद ।

अमेध्य कुक्षिमे महाँ । रुकंत काय सो तहाँ ।
विराजमान होयहै । महान कष्ट जोय है ॥ ९ ॥
जवैप्रसूत वायुते । स दुःख बाहिरावते ।
कृमादि गंदग्यादिते । सहे महा विषादते ॥ १० ॥
प्रहार मात तातकी । सहे सखादि भ्रातकी ।
शिशादि मों अनंतही । सहे कलेश जंतुही ॥ ११ ॥
पुना युवा विखे जवे । त्रिया वियोग व्है कवे ।

व:त कष्ट जोय है । सहे न जात सोयहै ॥ १२ ॥
भूपालादिमैंहृशे । निरादरादियोंग्रसे ।
अमृ य दुःख गावहै । असाधु वृद्ध भावहै ॥ १३ ॥

चौपाई ।

तीन अवस्था तीन कालमें।नहिं अवलोकत सुख कतहूँमें।
अज चीटीते ले भव जेतो।सर्व दुःख कर संयुत तेतो॥ १४ ॥
सुख स्वरूपहै एक निजातम।इतर दुःख मय सर्व अनातम।
ताँसुखुऋतेकितेसुखजोलव।तौतुमभनोंजनों निजअनुभव॥
जोतुमसुखके प्रापति कारण।सहोदुःखतेदुखतर दारुण।
मरण प्रयंतकष्टअतिपावो।सुखीस्वमुखतेकबीनगावो १६ ॥

दोहा ।

जेते सुख सत लोकलौ, तेते देत कलेश ।
आतम सुख तेऋते सुख, किते नहीं लवलेश ॥१७॥

श्लोकः ।

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदा-
मिनी चंचला आयुर्वायुविघट्टिताभ्र
पटली लीनाम्बुवद्भंगुरम् ॥ लोला यौवन
लालना तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं योगे

धैर्यसमाधिसिद्धसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः ॥ १०१ ॥

पुनः नीलछंद ।

मेघ वितान समान विखे चपला चल ज्यों ।
हैं शबदादिक भोग सबे अति चंचल त्यों ॥
संघट वारिद वृंद विखे जल वायु हरे ।
काल तथा सब जीवनकी हत आयु करे ॥ १८ ॥
भोगन काज लडावत योजन यौवनको ।
लोलकल्लोल समान स्वभाव लखो तिनको ॥
विश्व समस्त विनश्वर शोध तुरंत नरो ।
योगविखे निज चित्त अरोपण नित्य करो ॥ १९ ॥

दोहा ।

दोहा ॥ धीरज करके सिद्धजो सुभग समाधि तुरंत ।
ताँमहिं अरपो मन जनो पुनर्जन्म है अंत ॥ २० ॥

श्लोकः ।

भोगा भंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भवस्तत्कस्यैवकृते परिभ्रमतरे लोकाः कृतं चेष्टितैः ॥ आशापाशशतोपशांति

विशदं चेतः समाधीयतां कामोच्छित्ति
शे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्म-
द्वचः ॥ १०२ ॥

पुनः चौपाई ।

विशय भोग जे अनिक प्रकारे । दुखद सरोग विनश्वर सारे ।
एततही भवरूप निहारो ॥ विनाभोग संसार असारो। २१ ॥
उत कतहेत जगत कृत अंतर।कीटकपिनवतभ्रमतनिरंतर।
रे लोको अविलोको नाहीं । शिर पर काल बाणकर माहीं।।
क्षणमहिं प्राण हान करडारे । बलीअक्षमीदयानधारे ।
तुमनिशिदिनअघओघकमाते।बलअबलादिस्वादुमदमाते।।
जानोंमनमोंमरणोसाचो । तबकतहेतवृथाभवराचों ॥
भाँतिभाँतिभवचेष्टाकरके।लहोकदाचितशांतनमरके २४।
ममवचननमहिंतवश्रद्धाजब।दुस्संकल्पविकल्पतजोतब ॥
आशापाशबहुतविधिकीजे।तासनिवासनउरमहिंदीजे २५॥
रजोतमोमयधीवृत्तीलख । करो तास को नाशपाशलख ।
निर्मलसतोवृत्तिसोंमिलकर।नरोकरोतुममननिर्मलतर २६॥
ऐसेविशदचित्तकोलोको। सम्यक निज स्वरूप महिं रोको ॥

चितचेतनबिबनिर्मलतांते।होंहिंअभेदसजातीज... षसघ
भेदसजातीपुनःविजाती।स्वगतत्रिभेदअतीतअ...
ताँतेताँमोंवृत्तिसजाती।अरपोजनोंतुमूँदिनराती ॥२...॥
जीवईशकोभेदनभोरा।जाँहिंमिले पुन नाँहिं विछोरा ॥
सकलकामनात्यागअधीनों।सर्वेच्छातजताँकोचीनों२९ ॥
याँतनमाँहिंनिजातमसुखको ।अनुभवकरोहरोभवदुखको
मोरगिरामोंतोरसनेहा।धरोतबेतुममममतिएहा ॥३०॥

दोहा ।

विषम[1] दुखद क्षण भंग मय, भोग रूप संसार ॥
ताँको विद संसार सम, कोविद देत निवार ॥ ३१ ॥

श्लोकः ।

तस्मादनंतमजरं परमं विकाशि तद्ब्रह्म
वांछतजना यदि चेतनस्थाः ॥ यस्या

१ विषम अर्थात् अति टेड़ामेड़ा दुःखके देने वाला तथा क्षण क्षण में रूपान्तर बदलने वाला (भोग) सर्पके शरीर जैसा यह जगत् है । इसका विद अर्थात् ज्ञान (संसार) महाजलजंतुवत निगरजानेवाला है अथवा इसको संसार नामक महाजलजीवकी तरह भयानक जानकर (कोविद) पण्डित तत्त्ववेत्ता लोग त्याग देतेहैं ।

श्री ... आश्रम

विशेगेण इमे भुवनाधिपत्यभोगादयः
शे॰णलोकमता भवंति ॥ १०३ ॥

पुनः सवैया ।

जबहो बुधिमान पुमान भवान तबी ततब्रह्म कु ध्यान धरो ।
जुअनंत विकाश परं अजरं तत लाभ ति आन न लाभ परो ॥
रुचि हेतु विपश्चित केचितको भव भोग कदाचित है सगरो।
जन नीच करे रति बीचइने अज्ञ तज्ञ विखे इतनो अंतरो ३२

अथवा तोटक छंद ।

जडरूपसबीतनआनजिते।जिनमैंनशुभाशुभज्ञानकिते
चिदएकलखोनरके तनको।जिसमाहिंलखेसतचेतनको।
सुखरूप अनंतपरं अजरं।अजरूपविकाश अनूप ररं ॥
समएदशलक्षण आतमके।अधुनारथ भाखतहैंतिनके॥
वहिसत्यत्रिकालअबाधजुहै।इनमैंश्रुतिलौकिकमानदुहै
श्रुतिवाक्यसदेव इतादि ररे।जनजेजनमांतरकामकरे॥
फलताँकृतको इतलोकमिले।इतकीकरणीपरलोकफले
इमजीव मरेनहिं लोकमते।सबजीव कुजीवअहेजिहँते ॥
मनधीतनलौजडरूपसबी।नस्वतेजिनमोंकछुज्ञानकबी
इकचेतनतेसबचेतनहैं।इतिहेतुचिदातमधीरलहैं।।३७॥

सुखसागरब्रह्मकिअंशकनी।अनुस्यूतत्रिलोकिविषेसद्द
थितकंचनकंदलमाहिंयथा। सबभोगनमोंसुखताहितथा ॥
तिहँते न ऋते सुखनैक किते।सुख मूरति स्वातम हेतु इते।
नप्रमाणविषेनहिंनाशजिसे।परिपूरणऔनहिंजन्यकिसे ३९॥
इतिहेतु अनंत निजातम है। परते पर जोपरमातम है।
तन वाम तनै धन धाम परे। जिहँवेदमनादि नवेद ररे॥ ४०॥
इति रीति परातम वेदभना।अजरातममायककाय विना।
अथवाअशिअग्निकटेनदहे।सबकातमतेअजरासुकहे४१॥
इमपारथकोभगवानरटो।नहिं जन्यअनादिस्वतेप्रगटो।
भव हेतु विशेषण चारगहे।तसमातअजातमवेदकहे॥ ४२॥
नहिंजाग्रतस्वप्ननींदविखे।सकुचातविकाशस्वरूपविखे।
थकवेदहटेउपमाभनके।त्रिपुटीविनएकविषेकिनके॥ ४३॥
इतिहेतु अनूप पुनःसमहीं।दुग्धादिसमं परिणाम नहीं।
जितएकरसातमवेदकथा।अथवासबमोंसमरूपतथा४४॥
तुमचेतनकायकुपाय नरो।इसचेतनमोंअतिप्रीतिकरो।

नाधिपतादिकभोगजिते। ततब्रह्मअवांतरएभितिते ४५
..त दीप यथा रवि मैं वरते। नरते इन मैं नर जे वरते।
..नमैं जन मूढ सनेह करें। तस्मात पुनःपुन देह धरें४६॥
तनुचेतन चेतन हेतु भयो। भवभोगन हेतु न देव दयो।
इतिहेतुजनोंतुमभोगतजो। तनमानसमोनिजब्रह्मभजो ४७

श्लोकः।

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्म-
हाशासने तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने
भोगरतिं माकृथाः॥ भोगः कोपि स एक
एव परमो नित्योदितो जृम्भते यत्स्वा-
दाद्विरसा भवंति विषयास्त्रैलोक्य
राज्यादयः॥ १०४॥

पुनः कवित्त।

परम उदित नित्य स्वप्रकाश सत चित,
ऐसे एक ब्रह्ममैं को एक जन वसे है।
कंजपूत पुरहूत की विभूति भूतशिखी,

घासराशके समान मानके न फँसे है ॥
तीन लोक राज्य आदि संपदा अस्वाद भासे,
जाकी छाया मात्र कर माया मात्र लसेहै ।
ताते भिन्न भोग क्षण भंगुर को राग तजो,
रागद्वेष नाग रिदे विलमों न धसेहै ॥ ४८ ॥

दोहा ।

भोग राग जबहींगयो, गयोद्वेषतिहँ संग ॥
जब विलाय यहि द्वैतभ्रम, तबै सबै चिदअंग ॥४९॥

श्लोकः ।

भोगा स्तुंगतरंग भंगचपलाः प्राणाः क्षण-ध्वंसिनः स्तोकान्येवदिनानि यौवनसुखं प्रीतिः प्रियेष्वस्थिरा ॥ तत्संसारमसार-मेव निखिलं बुद्ध्वा बुधा बोधने लोका-नुग्रहपेशलेन मनसा यत्नः समाधी-यताम् ॥ १०५ ॥

पुनःकवित्त ।

तुंगभोग इंद्रलोक सत्यलोक लगजेजे,
तेतेही तरंग सम भंग पहिचानोरे ।
जीवनके जीवने की रास एक श्वास सोऊ,
दामनी समान क्षण माहिं हाँन जानो रे ॥
यौवनको सुख थोरे दिनोमें विमुखहोरे,
मीतन की प्रीति पुनि नीति न पछानोरे ।
सकल संसारको विचारके असारतजो,
बोधहेतु बुद्धिमानो मेरी बुद्धि मानो रे ॥ ८० ॥

दोहा ।

सुख आत्माके दर्शहित, चिता दर्शको शोध ॥
सभ पर करुणा रेणु कर, विनशैं द्वैत विरोध८१॥
दशमो सर्व सुहृद अती, भयो सुअंतर्धान।
हरे सकल के दुःखको, करे वेग कल्यान ॥ ९० ॥

सोरठा ।

रुद्राध्याय मँझार, अधुनानिंदहिं नारिको ।
चारश्लोक उचार, जाते तजे उदार त्रिय ॥ १ ॥

श्लोकः ।

स्तनौ मांसग्रंथी कनक कलशावित्युपमितौ मुखंश्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ॥ स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धिजघनं मुहुर्निंद्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ॥ १०६ ॥

पुनःकवित्त ।

मांसग्रंथि कुचन को कंचनके कुंभकहें,
सोमसम मुख कफ धामको उचारेहैं ।
चंपाकलीके समाने दाडिमके दाने भाने,
हाडनकी दाँतपाँतिको दिवाने सारेहैं ॥
मूत्र भिगी जंघन की संघनी बड़ाई भने,
निंदत गजिंद कर केलाको निवारे हैं ।
अहोनिंदा योग्य रूप अंगना को ताकी ऊप,
ध्वने मतवारे शीश धुने मतिवारे हैं ॥ २ ॥

श्लोकः ।

दीनादीनमुखैः सदैवशिशुकैराकृष्टजी-

पुनःकवित्त ।

तुंगभोग इंद्रलोक सत्यलोक लगजेजे,
तेतेही तरंग सम भंग पहिचानोरे ।
जीवनके जीवने की रास एक श्वास सोऊ,
दामनी समान क्षण माहिं हाँन जानो रे ॥
यौवनको सुख थोरे दिनोमें विमुखहोरे,
मीतन की प्रीति पुनि नीति न पछानोरे ।
सकल संसारको विचारके असारतजो,
बोधहेतु बुद्धिमानो मेरी बुद्धि मानो रे ॥ ९० ॥

दोहा ।

सुख आत्माके दर्शहित, चिंता दर्शको शोध ॥
सभ पर करुणा रेणु कर, विनशै द्वैत विरोध९१॥
दशमो सर्व सुहृद अती, भयो सुअंतर्धान।
हरे सकल के दुःखको, करे वेग कल्यान ॥ १० ॥

सोरठा ।

रुद्राध्याय मँझार, अधुनानिंदहिं नारिको ।
चारश्लोक उचार, जाते तजे उदार त्रिय ॥ १ ॥

श्लोकः ।

स्तनौ मांसग्रंथी कनक कलशावित्युपमितौ मुखंश्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ॥ स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकर-स्पर्धिजघनं मुहुर्निंद्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ॥ १०६ ॥

पुनःकवित्त ।

मांसग्रंथि कुचन को कंचनके कुंभकहैं,
सोमसम मुख कफ धामको उचारेहैं ।
चंपाकलीके समाने दाडिमके दाने भाने,
हाडनकी दाँतपाँतिको दिवाने सारेहैं ॥
मूत्र भिगी जंघन की संघनी बड़ाई भने,
निंदत गजिंद कर केलाको निवारे हैं ।
अहोनिंदा योग्य रूप अंगना को ताकी ऊप,
ध्वने मतवारे शीश धुने मतिवारे हैं ॥ २ ॥

श्लोकः ।

दीनादीनमुखैः सदैवशिशुकैराकृष्टजी-

गांबरा क्रोशद्भिः क्षुधितैर्निरन्नविधुरा
दृश्येन्नचेद्गेहिनी॥याच्ञा भंगभयेन गद्ग-
दगलत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं कोदेहीति वदेत्स्व
दग्धजठरस्यार्थे मनस्वी पुमान्॥१०७॥

पुनःकवित्त।

जठरागजारेपेट निजताके शांत हेतु,
कौनमानी प्राणीदेहि वाणीजो उचरहै।
गदगद गलत तुटत लीन अंक जाँमें,
याँचाभंग भैसो ऐसी गिराभी नररहै॥
भूखे बार रोके गार देकेटूको माँगे माते,
दीनादीन मुखजाके क्षीणापट हरहै।
जौलौंऐसी निजनारी व्याकुली निहारी नाहि,
पेखने ते पेखने ज्यों नाचेघरघरहै॥ ३॥

---

१ भूखे बालक रोरोकर अपनी मातासे गारी देकर खानेको मांगते हुए तथा भूखसे दीन और क्रोधसे अदीन मुखोंवाले होकर अपनी माताके ऊपरका फटासा वस्त्र खैंचते हुए पुत्रोंवाली अपनी नारी जबतक ऐसी व्याकुली नहीं दिखी तबतक कौन मानी प्राणी देह वाणीको कह सकताहै?अर्थात् कोई नहीं परन्तु ऐसी अपनी स्त्रीके देखनेसे इस पुरुषको पेखने अर्थात् तमाशेके बन्दर की तरह घरघर नाचना पडताहै।

श्लोकः ।

सत्यामेव त्रिलोकी सरिति हरशिर
श्चुम्बिनी विच्छटायां सद्वृत्तिं कल्प-
यंत्यां वटविटपभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च ॥
कोयं विद्वान् विपत्तिज्वरजनित रुजाती-
वदुःखासिकानां वक्त्रंवीक्ष्येत दुःस्थे यदिहि
न बिभृयात् स्वे कुटुंबेऽनुकंपाम् ॥१०८॥

पुनः दोहा ।

ढुरत हरत त्रैलोकके ,तुरत त्रिलोकी सरित ।
ईश शीश की जटाको, छुहति छटाजिहँ सरंत॥४॥
तातट पर संघट विटप, वल्कल फुल फल दाय ।
सुखद सर्वदा रुचित शुचि,शुभवटादि कीछाय॥५॥

सोरठा ।

अस सुरसरि के होत, कृपण नृपन दुर्मुखनको ।
निरखत निपुण न कोतं,निजकुलपोषणकारणे॥६॥

---

१ गमन करती हुई । २ मूढ ।

दोहा ।

उत्पत विपता तापते. दुसह दुःख जु क्षुधादि ।
निज कुटुंब अस विकल लख,करे सुजन जुप्रसादि७॥
वही पुरुष परिवारकी, विपता हरण निमित्त ।
वायक सायक खलोंके, सहे सही हितवित्त ॥ ८ ॥
दुखीदेख परिवार निज, दुखीहोत मतिहीन ।
भ्रष्ट आतमानंद ते, भयो दीन ते दीन ॥ ९ ॥
करुणाकरे कुटुंबपर, दुखीदेख तिहँ अंध ।
नरते दुखटरते न तिहँ, जो अदृष्ट प्रतिबंध॥१०॥
जासं कृपा की कृपाकर नाश उभय आनंद ॥
ता करुणाते नरनको, मरणा शुभ विन मंद॥११॥

सोरठा ।

ततततकरतेकाम, भवतदुःखपरिणाम जित ।
त्रियानुकंपा दाम, गरेपरी पशुवत चरे ॥ १२ ॥

---

(१) जिसकुटुंबपर कृपाकी कृपासे इस पुरुषका लोक परलोकका अथवा व्यवहार परमार्थका उभय आनन्दनाश होताहै उस करुणासे तो पुरुषोंको मरणा अच्छाहै परन्तु (मन्द) मूर्खसेविना अर्थात मूर्खको मरणा काम नहीं परन्तु विचार शीलको तो मरणाही अच्छा है.

दोहा ।

दुःखविसर्जनकृपणधी, सहितकष्टतेकष्ट ।
निशिवासर आसुर मती,करत स्वापे[१]को नष्ट॥१३॥
बह्यो जात भव सिंधु महिं, पायो कष्ट अवाच ।
दया न शठ निज पर करे,जाते दुखते बाच॥१४॥
सुजन मया निज पर करे, अपनो करे उधार ।
भजे हरी हरिद्वारको, तजे कुटिल परिवार ॥ १५ ॥

सोरठा ।

मात तात गुरुनारि, जो विघनी हरि भजन महिं ।
ताको डार उदार, हरि भज जन्म सफल करे ॥ १६ ॥

श्लोकः ।

विरमत बुधायोषित्संगात्सुखात्क्षणभं-
गुराद्भजत करुणामैत्री प्रज्ञावधू जन
संगमम् ॥ नखलु नरके हाराक्रांतं घन-
स्तन मंडलं शरण मथवाश्रोणी बिंबर-
णन्मणि मेखलम् ॥ १०९ ॥

---

(१) अपने आपको ।

पुनः चौपाई ।

योषित युत संभव सुखजोऊ।हरोनरोक्षणभंगुरसोऊ ॥
आयु स्पर्शमात्र हैताकी।भोगतपरमदुःखतिहँबाकी १७
भोगानंदनधनविनपावत।विनाअनर्थद्रव्यनहिंआवत॥
विषयभोगसुखलाभनिमित्ता।करअनर्थकछुसंचितवित्ता॥
ताकरदुःखमिश्रितसुखभोगत।ताफलमरकरलहितअधोगति।
तातेनखशिखाग्रलौनारी।मोक्षविषेप्रतिबंधकभारी॥ १९॥
निकरदुखांकुरात्रियकेगात।तजेत्रिधाविधिताहिंभ्रमाता।
घनकुचमंडलमृदुरमणीको। संयुतमुक्ताहारमणीको।२०॥
सर्व ओरअतिसुंदर लागे। हेरतजासमनो भव जागे ॥
हेममणीमयवणीतडागी।श्रोणीबिंबोपरवरलागी २१॥
अतिशब्दायमानअभिरामी। जिहँध्वनिसुनजनमुह्यतकामी
अंग अंगनाकेहैंजेते। हेतुअनंगागनि के तेते ॥ २२ ॥
तामें जंतु निरंतर जरते । उरविचार भयवारिनधरते॥
क्रोध लोभ मोहादिवक्रछल।सखामैनकेमैनतुल्यबल२३
एक पंचसरको जहँ वासा।तहाँक्रोधलौकरहिंनिवासा॥
जहाँ एक की गणती आवें।तहाँ अनेक अवश्य रहावें२४

नर[1] तनु मों जन्में अरु मरहैं।जबकुसंगसतसंगतिकरहैं।
सर्व अनर्थहेतु सुख हंता।गर्जत सब अपवर्गप्रयंता २५॥
सब संबर[2] सम उरकोजारत।शमदमादिसंतोषहिंटारत॥
त्रियके गात सुअंबर भूषण।दर्शें कबी विलोके दूषण२६
जाकरमन्मथमथेनमनको।नाँतरमनवपुहैत्रियतनको ॥
लगो बाम मों कामउपावे।प्रथम विवेक शमादि नशावे॥
छलामर्ष मदमोहसनेहा ।इनहिंअवयवहिंसाहितअदेहा[3]॥
भयोपुष्ट प्रतिजन्ममँझारी।बृहद्भानु[4] इव जारत भारी२८
याविधिनिकरअवधहतकरके।परतनरकमहिंजबनरमरके॥
तहाँताहिंनरकागनिजारे।दुःखअवाच्यअनुभवहिंसारे॥
ते कत नरकदुःखतेराखहिं।नहिंराखहिंप्रतितामहिंराखहिं॥
इत उत माहिं तपावनवारे।नारिअवयवहृदयजबधारे॥

---

१ इस पुरुष शरीर ही में इन कामादिकोंका विशेष रूपसे जन्म होताहै और इसी में सत्संगमिले तो इनका मरणभी होताहै ।२ कामादिसबी (संबर) शीतजलकी तरह उरमें प्रवेश कर उसको जड़ी भूत कर देतेहैं अथवा सबी संबर कहिये अतिबलीहैं तथा समानहैं और मिलके उरको जलाते रहते हैं । ३ कामदेव । ४ अग्नि ।

ाते संगवाम को तजिये। नातर अवरवधूजनभजिये॥
करुणा मैत्री प्रज्ञाभारी। सेवहु सुखद अयंत्रय नारी ॥

सोरठा ।

मतदर्शों त्रिय अंग, जो कदापि चूके पिखो ।
निश्चय लगे कलंक, भाद्र चौथ के चंद्रवत॥३२॥

दोहा ।

त्रियानिंद एकादशो, अलंभयो अध्याय ।
बल गुण गण नरके हरे, मरके नरके पाय ॥११॥

दोहा ।

वृद्धावस्था द्वादशो, पांच छंद कर निंद ।
दुःखनिरादर चिंतनिधि, विनपौरुष मतिमंद ॥१॥

श्लोकः ।

वर्णं सितं समभिवीक्ष्य शिरोरुहाणां
स्थानं जरापरि भवस्य तदेव पुंसाम् ॥
आरोपितास्थिशकलं परिहृत्य यांति
चांडाल कूपमिव दूरतरं तरुण्यः ॥ ११०॥

कवित्त ।

जरा करसेत वार नरोंके निहार नारि,
करें ताँहिं त्रिसकार भांगे फेर नारिको ।
हाड घटी रज्जु नारि मंदर सहेर डार,
विप्रनारि वृद्धरूप कूपचमिआरको ॥
दाहें तीन² ताप भानु ने˘ ˘न ज्ञान कान,
तजें ताहिं मात आदि ज्यों उदार दारको ।
अहो कष्ट जीव दुष्ट तजे न अनिष्ट अजे,
नाँरी³ तजे तनु भजे मन अजे नारिको ॥ २ ॥

---

१ अर्थात् अधम पुरुष तिरस्कार को सहार करभी फिर उसी स्त्रीको चाहताहै और स्त्री उस वृद्धपुरुष के हाडरूपी घटीको और रज्जुरूपी नाडिओंको तथा मेदमज्जादि रसरूपजलको मन्द देखकर ऐसे छोडदेती है जैसे कुलीन ब्राह्मण की स्त्री चमार के कूपपर उक्त-निषिद्ध सामग्रीको देखकर उस कूपको छोडदेवे ।२ आध्यात्मक अधि दैवक तथा अधिभूतक यह तीन ताप रूप सूर्य्य उस वृद्ध को तपाताहै और नेत्रोंसे देखना मुखसे बोलना चित्तकी ज्ञान शक्ति कानोंसे सुनना यह सब उसके जाते रहतेहैं अर्थात् जैसे विषयी पुरुष माता समानवृद्धस्त्रिओंसे उपराम रहताहै वैसेही नेत्रादि इन्द्रिय भी वृद्ध पुरुषसे उपराम होजातेहैं । ३ शरीरमें नाडियां भिन्न २ दीख रहीहैं ।

श्लोकः ।

ाघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयंती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरंति देहम् ॥ आयुः
परिस्रवति भिन्नघटादिवांभो लोक स्तथा
प्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ १११ ॥

दुवैया छंद ।

व्याघ्रीके सम स्थित ह्वैकर जरा अवस्था करति प्रहार।
तीक्षण क्रूर नखाग्र रोगकर परिताडत तनुको बलधार।
उचित अवध परिस्रवत सतत इव फूटे घटते छूटे वारि ॥
लोक सु अहित तदपि आचरहै अहो करे हित नांगीकार ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च
दंतावलिर्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता
वक्त्रं च लालायते॥वाक्यं नाद्रियते च बां-
धवजनै र्भार्या न शुश्रूषते हाकष्टं पुरुषस्य
जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥ ११२ ॥

मनोज छंद ।

सकुचे सब अंग विभंग सुचाल ।
पुन भ्रष्ट समष्ट भई रद माल ॥
द्युति लोचन की सब मोचन अस्त ।
नहिं कानसुने कलहा न समस्त ॥ ४ ॥
मुख मध्य भई कफ वृद्ध महान ।
इतिहेतु स दुःख गतागत प्राण ॥
कछु याचन हेतु मुखों जब वाच ।
जन बंधु बकें तब वाक्य अवाच ॥ ५ ॥
ललं[1]ना पलना मिलनाजु तजंति ।
वहि नाह कि सेव कु नाँहिं करंति ॥
पुनि जीरण आयुष मानुष जोय ।
निज पुत्र अपी सम शत्रु विलोय ॥ ६ ॥
तिनके दुर्वायक सायक संग ।
उर वेधत भीन तजे तिन संग ॥

---

१ ललना अपनी स्त्री जो कि (पलना) शय्यापर मिलकर छोडा नहीं करतीथी अथवा पलभर न मिलनेसे जो अनाज छोड देतीथी वहभी अपने (नाह) पतिकी सेवा नहीं करती ।

ाते ्त रीति व्यतीत भई सब आउ ।
करु अजे पितजे निज मंद सुभाउ ॥ ७ ॥

दोहा ।

जरा उपाय नह्वै सके, जरा आयुके माहिं।
भवसागर के तरण को,तरुण अवस्था आहि॥८॥

श्लोकः ।

वलिभिर्मुख माक्रांतं पलितैरंकितं शिरः ॥ गात्राणि शिथिलायंते तृष्णैका तरुणायते ॥ ११३ ॥

कबित्त ।

आनन की छवि वली गणोकर टली गली,
काननकी गली बलअंकोमै न भासहै।
लोयन के माहिं कछुलोय नाहिं परे स्वच्छ,
रसना मो रसनाशो नास कला नाशहै ॥
केश भए उजर न रह्यो कछु उजर,
जवानी गई उजर न श्वासको विश्वासहै ।
तृष्णातो अनंत अंत भयोहै संघात सब,
शांति भई शांत नाहिं शांत भोग आशहै ॥ ९॥

श्लोकः।

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुष बहु
लितः समानाः स्वर्याताः स
जीवितसमाः ॥ शनैर्यष्ट्युत्थानं घना ॥
मिर रुद्धेच नयने अहो धृष्टः का
स्तदपि मरणापाय चकितः ॥ ११४ ॥

कवित्त।

तनुवृद्ध भएते न वृद्ध भई भोग इच्छा,
मन मैंतोभोगन की कोटि मन रतिहै।
सने सने उतथान लोचन की द्युति हान,
मानवकोबहुमान हानभयो अतिहै ॥
सखे सम वैस वारे प्राणो वत जेईप्यारे,
कबके पधारे नाक देखी ऐसी गतिहै।
अहो अजे नीच निज मीच बीच हासी भजे,
जीवन चहित मृत्यु जीव न चहित है ॥ १० ॥

सोरठा।

दुख अनेक को गेह, विना विवेक विवेक कर।
निंद जरजरो देह, भयो इति श्रीद्वादशो ॥ ११ ॥

दोहा ।

ाते ुत रीति व्य

कर अजे पितजे कृपाकर, संकीरण उपदेश ।

ाोक कर,जन मन नलिन दिनेश॥१॥

जरा उपा

श्लोकः ।

ातः कूर्मः स एकः पृथुभुवन भराया-
ार्पितं येन पृष्ठं श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य
भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्वि चक्रम् ॥
संजात व्यर्थपक्षाः परहित करणे नोप-
रिष्टान्नचाधो ब्रह्मांडोदुंबरांतर्मशक वद-
परे जंतवो जातनष्टाः ॥ ११५ ॥

गीया मालती छंद ।

है धन्य कूरम एक सो पर अर्थ जिहँ भव लीन है ।
पृथुभुवन भारतरे जिनें निज पृष्ठ अर्पण कीनहै ॥
अतिजन्मध्रुवकोयोग्यकीरतिजासकीरतिहरिविखे।
चौफेर जाँके तेज चक्र भ्रमंत रोक्यो सबपिखे ॥ २ ॥
ज्योंमसक गूलर फलविषे संघट महा संकट सहैं ।
पख वृथा संभव ताँहिं के नहिं अर्द्ध ऊर्द्ध विचरहैं ॥

संजात जहँ मर जात तहँ ब्रह्मां
नहिं ज्ञात धर्माधर्मकी संभोगमैं
परमार्थ अरु परस्वार्थद्वै वृत्ति पंख
प्रारब्ध के वशिस्वार्थके पुरुषार्थकरत सद ॥
जनजहाँ लागे प्राणत्यागे विनातिसे नहिं तज
संवेद युक्ति न बंध निज अश्रेयको जड भजत हैं॥

दोहा।

गूलर फल ब्रह्मांडमों, मच्छर मानव आन।
गहें मुक्ति विन जन्मगण,स्वपर अकिंचितज्ञान॥८॥

श्लोकः।

सजातः कोप्यासी न्मदनरिपुणा मूर्ध्निध-
वलं कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलंकार-
विधये ॥ नृभिःप्राणत्राणप्रवणमतिभिः
कैश्चिदधुना नमद्भिः कः पुंसामयमतुल
दर्पज्वरभरः ॥ ११६ ॥

कवित्त।

वही जन जनमे कपालजाके उज्वल्लको,
धार्यो समरारि शिरे ऊंचो अलंकार मान।

श्री राम तीर्थ आश्रम

ाते त रीति व्य मान जाकों तन धन हान,
कर अजे पितजे त वहीजनधन्य जान ॥
े प्राणी वृथा महा मानी भये,
जल पाचकान कीनो मान जो महान ।
ास मान तापते पुमानकैसे तपे आप,
ानके समान सापमानको नकरेमान ॥ ६ ॥

दोहा ।

अहंकारते होतसब, क्रतु व्रतादि फल हान ।
अरु विन गुण जो दर्प है, सो अरि सर्प समान ॥७॥

सोरठा ।

ताते मतमति मान, मानकरे अभिमान को ।
गर्व सर्व दुख खानि, सुख अवास मद नाशहे ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

पातालान्न समुद्धृतो बत बलिर्मृत्युर्न नीतः क्षयं नोन्मृष्टं शशिलांछनस्य मलिनं नोन्मूलिताव्याधयः ॥ शेषस्यापि धरां विधृत्य न कृतो भारावतारः क्षणं

पौरुष्यं त्वकृतं रुषाभिगण
वहन् खिद्यते ॥ ११७ ॥

कवित ।

बालिको पातालसे निकालके न नाकपठयो;
कालको न नाशकीनो भव रिपु पीनोहै ।
विधुकी नमैल धोई व्याधिकी नजडखोई,
शेष शीश भारसो न काहूँक्षण लीनोहै ॥
पौरुष न कछु कीनो क्रोध अभिमान पीनो,
वृथा मान लीनो नर नाग सिंह चीनोहै ।
कीकरको तरुलाये कीकर सुफल पाये,
साधुन को पदचाहै साधनते हीनोहै ॥ ९ ॥

श्लोकः ।

रम्याश्चंद्रमरीचय स्तृणवती रम्याव-
नांतःस्थली रम्यःसाधुसमागमः शम-
सुखं काव्येषु रम्या कथा । कोपोपाहि-
तबाष्पबिंदुतरलं रम्यं प्रियायामुखं सर्वं

ाते त रीति व्य ामुपगते चित्ते न किंचि-
कर्ष अजे पितजे ८ ॥

सवैया ।

ोकमे ...... कियाकिरणाकलभूमि वनातहरेतृणवारी॥
सतसंगतिसुंदरचारुसतोसुखमंजुनिबंधकथामृत भारी।
रुठसोंउठकंलवलोचनतेसुठतांमिलनारिमुखांबुजकारी।
कमनीयसखीचितशांतजवीरमणीयतबीनकछूनिरधारी॥

दोहा ।

दुखानंद अरुमित्रअरि पुनासुरूपकुरूप।
द्वंद्ववादपरमादमों अप्रमादशिवरूप ॥ ११ ॥

सोरठा ।

निज कुख पोखन काम, तुल कुल दीन कभी नहै।
याचे वन वा ग्राम, मानी प्राणी धन्य बहु ॥ १२ ॥

श्लोकः ।

पुण्येग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्न-
पालीं कपाली मादाय न्यायगर्भद्विज
हुत हुत भुग्धूम्रधूम्रोपकंठम् । द्वारं द्वारं
प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्त्तो

मानी प्राणी सुधन्यो न
तुल्यकुल्येषु दीनः ॥ ११९

सवैया ।

वनग्रामनमोंढकपालीकपालीसितांबरसोंगहिभारवस्वतंतर ॥
जिहधाम न मों वरवामनहो मतआज्यतिलाहिप्रजारवसंतर ।
तिहँ होमके धूमसों मंदिरकोलखधूसरअंतर भागनिरंतर ॥
विचरे सुप्रसाद प्रसाद विखे भख आदि प्रसादभखेपरतंतर ।

सोरठा ।

जोजन मानी आहि, भोजन भिक्षा को करे ॥
वायक सायक नाहिं, सहे सजाती जनों के ॥ १४ ॥

श्लोकः

यनैवांबरखंडेन संवीतो निशि चंद्रमाः ॥
तेनैव च दिवाभानुरहोदौर्गत्यमे-
तयोः ॥ १२० ॥

दोहा ।

जिस अंबरके खंडकर,निशिमाहिं सोम वितीत ।
तिसे खंड कर पुनि दिने, मार्तंड संवीत ॥ १५ ॥
अद्भुतदुर्गति दुहुँनकी, भ्रमत सर्वदा जोय ।

ाते ंत रीति व्य ाहे, लहे चतुर नर कोय ॥ १६ ॥
अजे पितजे ाकको, विधु दिनमणि भोगंत ।
वि उपा गे नहीं, कर्मगती बलवंत ॥ १७ ॥
के हार भय लखि जगतकों, सेव करत द्वेदेव ।
किधोहरी आज्ञाकरी भव मर्याद हितेव॥ १८ ॥
अथवा संत जनानके, लक्षण को दर्शंत ।
हेर शुभाशुभ लोक गति, है असंग विचरंत॥१९॥
तजहिं आपदा माँहिंभी, नहिं निजापदा ज्ञान।
सूचत गुण मुक्तानके, चन्द्रभानु गति मान ॥२०॥
ताहिं गतागतको कहित, दुर्गति दुर्मति वंत ।
पूर्व उक्त चहुंहेतको जेन जानते जंतु ॥ २१ ॥

श्लोकः ।

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा परिष्वंगे तुंगे प्रसरतितरां सापरिणतिः ॥ जरा जीर्णैश्वर्य ग्रसनगहना क्षेपकृपणः कृपापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥ १२१ ॥

दोहा ।

हरे तृषा वैरागतब, धरेविवेक वि
तुंगभोग संयोग कर, होत न तृष्ण ॥ २
प्रति प्रवृद्ध तृष्णा भवत, जिम कृशानु घृत संग ॥
यथावि वेकी के उरे विद्यावृद्ध अभंग ॥ २३ ॥
जरासहित जीर्णलखी, अपनीशक्र विभूति ॥
दुखी भयो मनमाहिं तब, ताहिं विना पुरुहूत॥२४॥
नष्ट विभव भव दुसह दुख, तज नहिंसके सुरेश ।
विष्णु आदि की कृपाको, पात्रभयो अमरेश॥२५॥
जरा यातुधानादि कर, भवत विभव ममहान।
करुणाकर करुणाकरो,तासत्राण भगवान ॥२६ ॥
तुंग भोग संयोग कर, नाशजुहोती प्यास।
मघवाहोतो दीन कत, हरि अजादिके पास॥२७॥
विविध विषयके भोग कर, नहिं विबुधेश अघात।
स्वलप अवध लव भोग कर,नरन शांति कत जात॥
ताते इच्छानाशकी, जाको इच्छा आहि ।
उपशम धरे विचार युत, टरे एकते नाहिं ॥ २९॥

श्लोक: ।

स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः
गिरींद्रादुत्तुंगादवनिमवने
श्चापिजलधिम् ॥ अधोधो गांगेयं पदमु-
पगतं स्तोकमथवा विवेकभ्रष्टानां
भवति विनिपातः शतमुखः ॥ १२२ ॥

चंचला छंद ।

गंगनीर ए कछू अधे अधे गतीकरंत ।
नाकते हरे शिरे पुनागिरिंद पै गिरंत ॥
गिरिंदते धरापरे धरातिसिंधु मै परंत ।
शून्यजे विवेकते अनेक योनिते धरंत ॥ ३० ॥

श्लोक: ।

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु
सुरभि क्षुधार्तःसन्शालीन्कवलयति
शाकादि वलितान् ॥ प्रदीप्ते कामाग्नौ
सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं प्रतीकारो
व्याधेः सुखमिवविपर्यस्यति जनः॥१२३॥

कबित्त ।

जब मुख तृषा कर सूखे तबपीवे
मीठे ठंढे हरके सुगंधि वारे वारिको ।
क्षुधाकरभयो दीन शालीन महीनखात,
मेलकेवरीन शाक रागसों अचारको ॥
जागे मदनागे जब सानुरागे दौरतब,
नारिमें लगावे नर हृढकर नारिको ।
व्याधिके प्रहार प्रति करे प्रतिकार प्रति,
कैसे दुखभागे त्यागे संयमोपचारको ॥ ३१ ॥

सोरठा ।

तृष्णा वृद्ध अभंग, अतिभोगों के भोगकर ।
यथा अग्नि घृतसंग, संयम जल कर शांतबिब ॥३२ ॥

श्लोकः ।

किंवेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैःशास्त्रैर्महा-
विस्तरैः स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः
कर्मक्रियाविभ्रमैः ॥ मुक्त्वैकं भवभार-
दुःखरचना विध्वंसकालानलं स्वात्मा-

ाते ात रीति व्य
अजे पितजे कलनं शेषा वणिग्वृ-
४ ॥
उपा

कवित ।

चारोवेद तंत्र छठे सिमृति सताई पठे,
आगम जोदशअठे महाविसतरेहैं ।
मतोंसों विभ्रम महा कर्म क्रिया कर कहा,
देव ग्राम कुटीमो विश्राम फल करेहैं ॥
प्रलैकाल आगवत आतम विषैणी मति,
भव दुःख करेहत सोकुमति हरेहैं ।
शेष काम सारे वणजारे वृत्तियों निहारे
केदुकानके पुरान करप्राण धरे हैं ॥ ३३ ॥

दोहा ।

कहाग्रंथगणके पढे, किंकरमोंके कीन ।
चिज्जडग्रंथ प्रभेदिनी, धी उरजब प्रगटी न ॥ ३४॥

श्लोकः ।

रात्रिः सैव पुनः सएवदिवसो मत्वा बुधा
जंतवो धावंत्युद्यमिनस्तथैव निभृताः

प्रारब्धतत्तत्क्रियाः ॥ व्या…
भुक्तविषयैरित्थं विधेनामु…
कदर्थिता वय महो मोहान्न ल… १२५॥

छप्पय छंद ।

वही यामिनी जान पुनादिन तथा मान कर ।
मंद जंतु धावंति उद्यमात्यंत चित्तधर ॥
पारंभी प्रारब्ध क्रिया तहँ तहँ त्यों राते ।
वही उक्त पुनि वही भोग भुक्तेदिनराते ॥
इम विषय रूप यांजगतके व्यापारोंकरश्रमसहें ।
परिभ्रमतविरमतनमोहकरअहोकिनलज्जागहें ३५ ॥

दोहा ।

अहो शब्दपुनरुक्तिते, अतिडरपहिं बुधि मान ॥
पुनाउक्त पुन भुक्त यहि,कत पुनरुक्ति प्रमाण॥ ३६ ॥

श्लोकः ।

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा काम
रसिकः क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च संपू-
र्णविभवः ॥ जरा जीर्णैरंगैर्नट इव वली-

ाते त रीति व्य
अजे पितजे ः संसारांते विशति यम-
कााम् ॥ १२६ ॥

रपा

गीया मालती छंद ।

नट व रबहुस्वांगधर वपु बाल पल महिं लसकहै ।
पुनि क्षणविषे तनु तरुण है तरुणी न भोगहिं रसकहै ॥
हत सर्व द्रव्य निमेष महिं पुनि पलक मो है धनसबी ।
दुर्वृद्धता कर अंग क्षीण वली न कर सबछबि दबी ।३७॥
पश्चात गात किपातमै उतपात भ्रात हृदय पिखे ।
यमराजधानी भूभयानी पतित प्राणी तिहँ विखे ॥
प्राचीन कर्म मलीन के फलदीन है भुगवे तहीं ।
अस नरक के दुख निकर ते नर निकरसाके कत नहीं३८
पुनिकहू पुण्य प्रतापते तिनतापते निकसे जबी ।
धर विविध वेष न मुग्ध वेखहि निज स्वरूपहिं हट कबी॥
विषवत विषमरस विष्योंके जन तिहँ विषे मन लायहैं ।
इह हेतु नर दुःखके तपाय न पाय हरके ध्यायहैं॥३९॥

दोहा ।

तजे न नट नट भाव निज, भजे अनेक स्वरूप ।
नटते नर शठ तज स्ववपु,भजै विविध निज रूप४०

श्लोकः ।

तुंगं वेश्मसुताः सतामभिम
तिगाः संपदःकल्याणी दी
नवमित्यज्ञानमूढो जनः ॥ मत्वा विश्व
मनश्वरं निविशते संसारकारागृहे
संदृश्य क्षणभंगुरं तदखिलं धन्यस्तु
संन्यस्यति ॥ १२७ ॥

तोटक छंद ।

बहु तुंगअगार कुमारमहाँ।नविचार पतिव्रतनारितहाँ॥
पुरुहूतसमानविभूतिघनी।नपुमानकहूँकरजातिगनी ॥
जुमहाजनमाँहिं महाजनहैं।तिनकेमनवांछितजेधनहैं॥
बरतेमम अग्रसमग्रवहे।भवमोंअबमों समकौनअहे४२॥
जड जंतुइवेंजडता करके।गवैंअतिशयमतिको हरके॥
सबविश्वअनश्वरमानरते।परते[1]भवकृष्णगृहेनरते ४३ ॥
ममतामय संगल संगजरे।बहुयोनि धरेंसुख शून्यचरें॥
जिनयासगेरभवकोमनमैं।मनकेक्षणक्षीणतज्योक्षणमैं ॥
बसके वनमैं सत चेतनमैं । तदरूपभए जु इसे तनमैं॥
सुरपित्रसभीजनताहिंजजें।तिहँनामभजेअवओघभजें॥

---

१ पड़ते हैं संसार रूप अन्धे गृहमें वह पुरुष ।

दोहा ।

[illegible] दण्डधर, जे गर्वत धनपाय ।
[illegible] रीतिकै, ससकुटुंब बिबपाय ॥ ४६॥

श्लोकः ।

यद[illegible] मेरुःश्रीमान्निपतति युगांताग्निनिहतःसमुद्राःशुष्यंति प्रचुरनिकरग्राहनिलयाःधरागच्छत्यंतं धरणिधरपादैरपिधृता शरीरे का वार्त्ता करिकलभ कर्णाग्र चपले ॥ १२८ ॥

गीयामालती छंद ।

श्रीमत कनकगिरिदृढजबै सुप्रलय अगनि कर गिरपरे।
मकरादि जंतु अनंत केघर जलधि सुक हिं तिहँकरे ॥
जब शेषनाग शिरान करके धरत आपि धरती जरे ।
करिकरभके करणाग्रवत चल कायकी तब क्याररे४७

१ जे लोग धन पाकर गर्व करते हैं उनको दण्ड धर यमराज बहुत दुःखदेता है और जो पुरुष सुतां विपरीत है अर्थात् धनगर्व करने वालोंसे साधुरीति पूर्वक उलटा है उसके (स) वह यमराज सहित कुटुम्बके दोनों चरण पूजता है ।

दोहा ।

हेमाद्री वारी धरा, रवि विधु वि
करे अंत अंतक सकल,अहं जंतु

श्लोकः ।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं
गतं तस्यार्धस्य परस्य
बालत्ववृद्धत्वयोः॥ शेषं व्या
खसहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारित-
रंगचंचलतरे सौख्यं कुतः प्राणि-
नाम् ॥ १२९ ॥

कवित्त ।

शुभ शत संवत नरान की प्रमाण आयु,
तास आध भाग नाश होय रैन सोय है ।
बाल वृद्ध माहिं ताहिं आधो भाग बाधो आहि,
जाड्यता असक्यता की खानि वैस दोय है ।
शेषकी अवधी जोऊ आधिव्याधि संग सोऊ,
भ्रमणो विदेश होऊ सेवकादि खोय है ।

श्री राम शैव आश्रम

ाते त रीति व्य ायु माहिं सुखको तो नाम नाहिं,
अजे पितजे के समान भंग होयहै ॥ ४९ ॥

श्लोकः ।

रपा ः खंजः श्रवणरहितः पुच्छ-
य मरुः श्री पूतिक्लिन्नः कृमिकुलशतै-
हतःसमुद्राः क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरक
ग्राःधगा गलः शुनीमन्वेति श्वा हत-
मपि च हंत्येव मदनः ॥ १३० ॥

भुजंग प्रयात छंद।

हहा मीच को नीच मारे अनंगा।
इदं श्वान श्वानी कु चाहे अलिंगा ॥
कृशा पिंग काणा कटी पुच्छ गुच्चा।
श्रवे पूं व्रणोते भिगी सर्व त्वच्चा ॥
कृमासंख्य के संगसों व्यावृतांगा।
कटें कीट औ मक्षका पुंज काँगा ॥
तृषा भूख सों व्याकुलो जीरणांगा।
गरेबीच पेटारको पथ्य घांगा ॥ ५० ॥
इसे श्वान तेभी नहीं काम बाचे।

धनी ज्वानके चित्त मों किं न रा
डरे एक कामारिते मैनशूरा।
जंटी दासके पासते भीप्रदूरा॥

सोरठा।

शिव भृत शिवमय हेर, मनमथ त
डरे दहे मत फेर, नाम अनंग अ०॥ ३ ॥

श्लोकः।

माने म्लायिनि खंडिते च वसुनि व्यर्थे प्रयातेऽर्थिनि क्षीणे बंधुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने॥ युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः पूतग्राव गिरीन्द्रकंदरदरीकुंजेनिवासःक्वचित्१३१

मनोज छंद।

दरशे जन जो निज मान मलीन।
नित क्षीण पिखे धन लाभ रतीन॥
अरथी व्यरथे फिर जात कदंब।

---

१ शंकरके भक्तसेभी दूर रहता है।

ाते त रीति व्य पि स्वनष्ट कुटुंब ॥ ५३ ॥
अजे पितजे ा जुसने सन जोय ।
ज सबी जब होय ॥
रपा कों निज श्रेय निदान ।
य मरुः खेन अयं सुख खान ॥ ५४ ॥
हतःसमुद्राः करजो शुचि आहिं ।
रुयाःधरा ला उत कंदर माहिं ॥
अथवा वन कुंजन मों बुधवंत ।
बसके कतहूँ सिमरे भगवंत ॥ ५५ ॥

दोहा ।

नष्टभए भवभोगको, पुन न भजें जनस्थान ।
कहूँ विविक्तस्थानमें,बैठ करें हरिध्यान ॥ ५६ ॥

श्लोकः ।

प्रशांतशास्त्रार्थविचारचापलं निवृत्त नानारसवाक्यकौतुकम् ॥ निरस्तनिःशेषविकल्पविप्लवं प्रवेष्टुमन्विच्छति शंकरं मनः ॥ १३२ ॥

कवित्त ।

विविध प्रकार वेद अर्थके संवेद
चेतना मों चंचलाई सो निकाई
नाना विधि वाक्यनके कौतुक म
सो विरस भयो जाँहिं माँहिं बिलस
भाँत भाँत सकल विकलप प्रशां
रजो तमो तरे हित सतोके सहि
ईश्वरकी सेवहित ऐसोचित चाहै
ऐसे चित हीमों सत चित विकसत है ॥ ८७ ॥

श्लोकः ।

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं स्नेहो न बंधुषु न मन्मथजा विकाराः॥ संसर्गदोषरहिता विजना वनांता वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम् ॥ १३३ ॥

कवित्त ।

हरमें सनेह तर जनम मरण डर,
उरमाहिं कीनोघर बधूमें न रागहै।
मनोभव जो विकार मंद संसकारडार,

ाते ःत रीति व्य ्टार वसैकांत वाग है ॥
अजे पितजे कहा होर त्याग योग रहा,
जो वैराग्य ते वैराग्य है ।
रुपा को उत्तम वैराग्य ऐसो,
य मरुः ाको अभाग ताँते भाग है ॥ ९८ ॥

श्लोकः ।

हतःसमुद्राः यं सुखे क्षयभयं वित्ते नृपा-
लाद्भयं मान हानिभयं जये रिपुभयं रूपे
जराया भयम्॥शास्त्रे वादिभयं गुणे खल-
भयं काये कृतांताद्भयं सर्वं वस्तु भया-
न्वितं भुविनृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥१३४॥

कवित्त ।

भोगन मों रोगभय सुखोंविखे क्षयभय
धनमध्य भय भूपचोरको रहतहैं ।
दास मींहि स्वांमिभय जय माँझ रिपु भय,
भय कुल बीच नीच नारीको महतहै ।
मानमाहिं हानि भय गुणोंमें खलान भय,
काय मैं कृतांत भय भय सर्वगत है ।

निर्भय वैराग्य एक धरो नरो सा
गायो मैं अनेक अब थकी मोरि

दोहा।

शुभवैराग्य विवेक बिन,करहिं वे
दृगादित्य वत हरतहैं, अंधकार

सोरठा।

रजनी विन सित चंद निशाअसित
उभय सहित आनंद, त्योंवैराग्य विवेक ।१८॥६१॥

दोहा।

सत् समस्त वैराग्यको, कह्यो भरत शतमाहिं।
सत्य प्राप्ति हित वचन सत, धरो नरो उर ताहिं॥

सोरठा।

विन संग्रह सुविचार, पशू बद्ध ज्ञानी दुखी।
पंक्षी पंख प्रकार, उभय सहित सुखगति लहित॥

दोहा।

मुगधहुँ के उर उपल महिं, भरत वचन बटहेतु।
कहूँ पुण्य खगयोगते, वसे लसे सुखदेत॥ ६४॥
लोह छाप भाषायुक्त, वज्रभरत के बैन।
सार मुमोक्षी पारखु, गहे सर्वदा चैन॥ ६५॥

ाते ात रीति व्य... म संस्कृत, भाषा हरि पाषाण ।
...अजे पितजे... ानको, करत उभय कल्याण ६५ ॥

सवैया ।

...ाप... मनानसम।नकरेबहुदानमहानमणीके ॥
य... मरुः... नतेर इसथानकरेउत तीर नदीके॥
हतःसमुद्राः... भौन चरे अरवेद ररे सुपढावत नीके॥
गुणराःधरा...जनावरएकविरागविनासबफीके६६॥

कवित्त ।

दैवी गुण कवी गण औषधी समादि पुष्टे,
तृष्णा ताप मोह तम कामचोर हतहै ।
मुदित विवेकी कामी दुःखी मूढ ब्रेही वामी,
उदेधी त्रियामी मों कुसंग दिने गत है ॥
सकुचे सरोजभोगी मोक्ष सुधाके संयोगी,
श्याम श्वेत भोगी योगी मो बढे घटतहै ।
दोष वेदमाने नाहिं जनमन व्योममाहिं,
विधुवत विकसत निरवेद सतहै ॥ ६७ ॥

दोहा ।

अंक वृंद को गुंदकर, बंद छंदको कीन ॥

तुटत युक्ति छंदार्थ जहँ, कवी
योगी जनके वचनको, भोगीभे
ईशकृपा बल यथामति,कह्यो

कवित्त ।

बसे शिवा वामेअंग लसे भूत
ग्रसे भंग शीश गंग ज्ञान तीन
धेनु बाल वाहन सुधाल बालभा
गरेव्यालरुंड माल तरेसिंह खाल
नाथनकेनाथ हैं अनाथनकेनाथदेव,
जाँके पादपाथ माथ धरें हरे कालको ।
दयासिंधु अलकाम कामरिपु सुख धाम,
हरद्यालकी नमाम ऐसे हरद्याल को ॥ ७० ॥

सवैया ।

सुखशांत स्वरूप सवेंअहिऊपरवारिजनाभ सुरेशकिराँइ ।
सब विश्व अधार अकाश प्रकार सुवारिद रंगशुभांगसवाई।
वरश्रीवरलोचन नीरजसे जिहँ चीनत योगि समाधि लगाई ।
भवत्रासकिनाशकिहेत नमोतिनलोकपतीइकताँहारिताँई ॥

छप्पयछंद ।

उचित भरत वैराग्य इनहिं इंद्रादि न पावहिं ।

ाते त रीति व्य योग विखे सुर जन्म वितावहिं ॥
अजे पितजे वार पुण्यसब बहुजन्माको ।
भाग ताहिं हत भाग जनाको ॥
रपा रवेद तिहँ करे शांत उर भ्रांति हत ।
य मरुः नाहिंकोकहूँनसुखआदर लहत७२॥
हतःसमुद्राः ादशो हरहि तिमर उरभ्रांति ।
ाः धगा जनानको भयो आप अब शांत॥७३॥

सोरठा ।

भरत शतक वैराग्य, प्रारंभ्यो द्रुहिणी पुरे ।
सम[1] पवित्र प्रयाग, सुधा सरे इति श्री भयो ॥७४॥
शशि[2] वसु वसु रस शशि वती दरशासूके माँहिं ।
संपूरण संपूरणं भयो ग्रंथ शुभ आहि ॥ ७५ ॥

---

१ प्रयागके समान पवित्र जो 'अमृतसर–नगर' अथवा प्रयागके समान पवित्र जो यह ग्रन्थ । २ शशि एक वसु वसु आठ आठ रस छह एवं संवत १८८६ में शशिवाली अर्थात किंचित दृष्टचंद्रवाली जो सिनीवाली नामिका अश्विनमासकी (दर्श) अमावास्या उसदिन यह ग्रन्थ पूर्णरूपसे संपूर्ण हुआ ।

श्रीगणेशायनमः

अथ स्तोत्राणि

तत्र अमृतसरः स्तो

श्रीनानकाख्यगुरुणा रचि
जना युवतयोपि च तेन य
धगतशोकतया वसंति श्री ॥ श्रोत्रस्य
भज तत्सुबुद्धे ॥ १ ॥ ०॥ ३ ॥

हे श्रेष्ठ बुद्धि वाले पुरुष जिसपु नर
नारी बाल वृद्ध सबी श्रीगुरुनानकजीके निर्माण किये
श्रीगुरु ग्रन्थका पाठकर ब्रह्मात्म तत्वको प्राप्त हुये
शोकरहित होकर निवास करते हैं. ऐसे गुरुराम
दासके बसाये नगरका तुमभी सेवन करो ॥ १ ॥

संशोभतेऽमृतसरः खलु यस्य मध्ये ना-
म्ना ततोऽमृतसरो जगति प्रसिद्धम् ॥
यस्यामृतं हरति जन्मननाकनिष्ठं
श्रीराम० ॥ २ ॥

जिस नगरके मध्यभागमें एक अमृतका सरभी
सुशोभित है इसीलिये उसको लोग अमृतसरभी

ाते ंत रीति व्य । अमृत स्वर्गीय अमृतसेंभी अधिक
अजे पितजे यह जन्ममरणके भयको दूर
 गका अमृत नहीं करसकता इस-
रूपा ले पुरुष ऐसे गुरु रामदास नग-
करो ॥ २ ॥

य मरुः
हतःसमुद्राः सरसो हरिमंदिरं वै मध्ये
केन कृतं विचित्रैः ॥ नाना-
विधैर्मणिगणैर्घटितचदिव्यंश्रीराम० ॥३॥

जहां उस अमृतके तालावके बीच एक स्वर्णमय तथा अनेक प्रकारके मणिगणसे जड़ित १ दिव्य देदीप्यमान हरिमन्दिरभी बना है ऐसे पवित्र स्थलको हे सुबुद्ध पुरुष तुमभी सेवन करो ॥ ३ ॥

आस्तेहरिः सकलपापहरो हि यस्मिन्
साक्षात्स्वमंदिर उदारतराच्छकांतौ
श्रीग्रंथनामधृगनंतगृहीतरूपः श्रीरा०४

एवं जिस उदार तर स्वच्छ कान्ति वाले अपने हरिमन्दिरमें अनेक प्रकारके उपदेश मय स्वरूपोंको ग्रहण करता हुआ 'श्रीगुरुग्रन्थ' इस नामको धारण

कर सकलपापोंके हरने वाला साक्षा
मानहै । ऐसे पवित्र स्थल गुरुराम
सुबुद्ध पुरुष तुमभी सेवन करो ॥ ४

गायंति गानकुशलाः सततं
ग्यबोधजनकं गुरुशब्दमेव ॥ श्रोत्रेस्य
हरिमंदिर एव तेन श्रीरामपं० ॥ ३ ॥

एवं जिस दिव्य मन्दिरमें गायन विद्या कुशलरागी लोग प्रतिक्षण ज्ञान वैराग्यादिके बोधक श्रीगुरुनानक देवके उच्चारण किये शब्दोंका गायन करते हैं । तथा उनही पवित्र वचनोंको श्रवण कर उक्त मन्दिर गत अनेक नरनारी शांतिको लाभ करते हैं । ऐसे दिव्य स्थलको हे सुबुद्ध पुरुष तुमभी सेवन करो ॥ ५ ॥

श्वेताश्मसंघटितदीर्घविशालसेतौ ध्या-
यंति केचिदपरे विमृशंति यत्र ॥ पृच्छंति
केचिदितरे प्रवदंति तज्ज्ञाः श्रीराम०॥६॥

श्वेत पाषाण अर्थात् संग मरमरसे बनाहुआ दीर्घ

ाते त रीति व्यत हरिमान्दिरका (सेतु) पुल, उ
अजे पितजे लोग ध्यान करते हैं तथा अ
रतेहैं कई एक अधिकारी
रपा ा अनेक विज्ञलोग उनको उ
प्रभावशाली गुरुरामदास न
य मरुः भी सेवन करो ॥ ६ ॥

हतःसमुद्रा नपादरजोभिषेकान्नश्य
कोटिभवसंचितदुष्कृतानि॥दुःखं च
सकलानि हरिप्रसादात् श्रीराम० ॥

उस हरिमन्दिरके पुलपर निवास करने वाले
क्तजनोंके चरणोंकी धूलिसे मस्तकपर तिल
करनेसें अनेक श्रद्धावान् पुरुषोंके कोटिज
न्तरोंमें किये सकल पाप दूर होते हैं तथा
कृपासे वर्तमान कालमें होनेवाले अने
दुःखभी दूर होते हैं, ऐसे गुरुरामदास न
सुबुद्ध पुरुष तुमभी सेवन करो ॥ ७ ॥

संभाति हाटकमयी निकटे पताका कां-
त्याचभानुसदृशीहरिमंदिरस्य॥दिव्या-

...ाते ...त रीति व्य... हरि... ...क यथा...
...अजे पितजे... लो... ...ावसा...
...रतें... ...तदवा०॥...
...ग्र रूपा... ...निस्प...
य... ...ख्यात... ...नात्॥
...यश्चयोगगणश... ...दो जातंय...
...कोनुतुसत... मकमिदं... तोयाचरंग...
सकलपुम...तत्रततो...ीत् ब्रह्म० ॥ ८ ॥
...उस हार... ...सदेति...यिः खलुशुद्धबुद्धिः स्व...
...कजनोंके चरणोंकी ...ायनित्यम्॥ज्ञात्वाप...
करनेसें अनेक श्रद्धा... ...बन्धं सद्यःपुमान्भव...
...न्तरोंमें किये सकल प...
...कृपासे वर्तमान का... ॥ ९ ॥
दुःखभी दूर होते ...धंगंगारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरूपेण
सुबुद्ध पुरुष तुमभी ...रूपणं नाम स्तोत्रं समाप्तम् ॥

संभाति हाटकम... ...पादिदेव...
त्याचभानुसदृशी...